राम कथा के व्यापक आयाम

डॉ0 गिरजा शंकर त्रिवेदी

आवरण- डॉ0 दुर्गा शर्मा, रतलाम

राम कथा के व्यापक आयाम

लोकार्पण

माननीय राधेश्याम गुप्त

न्याय मंत्री

उत्तर प्रदेश सरकार

बहुभाषाविद महामहिम आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री

राज्यपाल

उत्तर प्रदेश

राम कथा के व्यापक आयाम

★ डॉ० गिरजा शंकर त्रिवेदी
संपादक 'नवनीत'

उत्कर्ष अकादमी, कानपुर

- प्रकाशक

  श्री प्रदीप दीक्षित

  उत्कर्ष अकादमी, कानपुर

  112/321, स्वरूप नगर, कानपुर

  फोन- 256357

- 24 दिसम्बर 2000

- मूल्य 25 रु० मात्र

RAM KATHA KE VYAPAK AYAM (ESSAY)

DR. GIRIJA SHANKER TRIVEDI

- सम्पर्क-

  डॉ० बद्री नारायण तिवारी, मानस संगम

  प्रयाग नारायण शिवाला, कानपुर

आमुख

किसी भी युग विशेष के साहित्य का सार्थक एवं न्यायोचित मूल्यांकन उस युग के लोक मानस में जागृत एवं उद्दीप्त रहने वाली उन भावनाओं और चेतनाओं के मूल्यांकन पर निर्भर करता है, जिनके कारण वह लोक मानस आपादग्रस्त होकर भी अपनी अस्मिता की रक्षा एवं अपने होने के गर्व के साथ जी सका है। मध्यकाल के लोक मानस की सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से दशा अत्यन्त दयनीय एवं चिन्तनीय थी। समाज मे एक ओर मनसबदारी थी। मनसबदारों के ठाट-वाट थे। दूसरी ओर ऐसी भी स्थिति थी कि किसानों को खेती और भिखारियों को भीख तक नहीं उपलब्ध थी। जीविका विहीन लोग कहां जाये! क्या करें! कैसे अपनी जीवन रक्षाकरें।

ऐसे विषम सामाजिक परिवेश मे गोस्वामी तुलसी ने अपनी सर्जना से, रामकथा के आदर्श के माध्यम से अपने समय के समाज का उसी प्रकार नेतृत्व किया जिस प्रकार महाभारत काल में योगिराज कृष्ण ने तथा वैदिक काल के उपरान्त पनपे कर्मकाण्ड एवं हिंसावादी काल में गौतम बुद्ध ने किया।

सच तो यह है कि आनन्दवादी, भेदाभेदवादी, तथा विशिष्टाद्वैत वादी इत्यादि चिन्तक इस जगत को सत्य बताते हैं, जबकि शून्यवादी, मायावादी तथा ब्रह्मवादी इसे मिथ्या बताते हैं। इस प्रकार के अनेक दार्शनिकतर्कों के मध्य व्यक्ति के आत्म साक्षात्कार का गहरा संकट सदैव रहा है। गोस्वामी तुलसीदास ने नानाविध भ्रमों से मुक्ति और अपने को पहचानने की प्रेरणा देते हुए लोकमानव के लिए सार्थक आत्मसाक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त किया और उन्हें अपने होने के गर्व के साथ जीना सिखाया। वस्तुतः लोक मानस के आत्म साक्षात्कार से प्रगट लोक शक्ति ही उनके सभी संकटों से मुक्ति का आधार बनती है। इसी लोक शक्ति का जागरण ही गोस्वामी जी के साहित्य का सार्थक एवं न्यायोचित मूल्यांकन लोक शक्ति जागरण के व्यापक आयामों को केंद्र में रखकर डॉ० गिरिजा शंकर त्रिवेदी ने अपनी कृति 'रामकथा के व्यापक आयाम' में समय-समय लिखे भाव समृद्ध लेखों से संकलितकर कृति को सार्थकता प्रदान की है।

मुझे विश्वास है कि सहृदय पाठक एवं तुलसी साहित्य के अध्येयताओं द्वारा इस कृति का स्वागत होगा।

- डॉ० यतीन्द्र तिवारी

विषयानुक्रमणिका

मर्यादावादी तुलसीदास

कर्मयोग की कार्य प्रणालीके दो पक्ष होते है। एक भावपक्ष और दूसरा क्रिया पक्ष। भाव स्तर पर कर्मयोजी सबमें समता देखता है, चाहे वह साधु हो या दुष्ट। परन्तु क्रिया के स्तर पर उसकी दृष्टि भेदपरक हो जाती है। साधु के साथ और दुष्ट के साथ अलग-अलग ढंग से व्यवहार करता है। दुष्ट का वह अपनी शक्ति के अनुसार दंड देना चाहेगा। यदि उसमें उतनी शक्ति नहीं है, तो फिर वह उसकी उपेक्षा करेगा। इसी तरह गोस्वामी जी ने भी भाव स्तर पर सभी का वंदन यह कर किया है- ''जड़ चेतन जगजीव जत, सकल राममय जानि।' परन्तु दुष्ट को दंड देने के भाव से वे नहीं चूके। राम अत्याचारियों को दंडित करने के लिए ही अवतरित हुए थे। शिवजीकाक भुशुण्डि को शाप देते हुए कहते हैं-

''जौ नहिं दंड करौं खल तोरा ।

भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा ॥

भरत की दृष्टि पूरी तरह कर्मयोगी की थी। वे राम के प्रति पूर्ण समर्पित थे। परन्तु क्रिया के स्तर पर साधु और असाधु में भेद देखकर काम करना जरूरी मानते थे। हनुमानजी पहाड़ उठाकर जब अयोध्या के ऊपर से गुजर रहे थे, तो भारत को लगा कि कोई स्वेच्छाचारी राक्षस आकाश मार्ग से जा रहा है और उन्होंने बाण मारकर अयोध्या के बाहर गिरने के लिए हनुमान जी को बाध्य कर दिया। इसी तरह राम का चरित्र ही कर्मयोगी का था, पर उन्हें अपना सेवक सबसे अधिक प्रिय था। यद्यपि यह जानते थे सारे जीव मेरे ही उत्पन्न किये हुए हैं। पर सेवक के प्रति वे यह भाव रखते थे कि सेवक ने उनसे तादाम्त्य स्थापित कर लिया है। वे मानते थे-

करहि मोह बस नर अघ नाना । स्वारथ रत परलोक नसाना ॥

कालरूप तिन्ह कहं मैं भ्राता । सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता ॥

गोस्वामी जी ने व्यक्ति के अंतः कारण को महत्वपूर्ण मानकर उसे अवतार पुरुष राम के साथ तादात्म्य स्थापित करके उनकें विश्व रूप को समझने की प्रेरणा दीहै।

गोस्वामी जी ने विरति पर जोर दिया है। क्योंकि व्यक्ति में जब तक आसक्ति रहेगी, तब तक उसे ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। बिना बिरति के विवेक संभव नहीं है। कहा है-

ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।

उन्होंने पूरी कोशिश की कि जन-जन में विवेक-वृत्ति पैदा हो, व्यक्ति शुभ-अशुभ, अच्छे-बुरे को समझ सके। उनका मानना था कि सक्रिय ज्ञान का ही नाम विवेक है। उन्होंने लिखा है-

कहहिं वेद इतिहास पुराना । विधि प्रपंचु गुन अवगुन साना

दुःख-सुख पाप-पुन्य दिनराती । साधु-असाधु सुजाति कुजाती ।।

दानव देव ऊंच अरु नीचू । अमिय सुजीवनु माहुरु मीचू ।।

माया ब्रह्म जीव जगदीसा । लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ।।

कासी मग सुरसरि क्रमनासा । मरु मारब महिदेव गवासा ।।

जड़ चेतन गुन दोषमय विस्व कीन्ह करतार ।

संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ।।

कर्मयोगी साधक को दिव्य स्तर से गिरने से बचाकर संत जैसा विवेक ही अभीष्ट तक पहुंच रखता है। सत्संग और गुरु की कृपा के बिना-बिना विवेक का जाग्रत होना संभव नहीं है। गोस्वामी जी ने रामायण के माध्यम से मानवीय विवेक को जाग्रत करने का पूरा प्रयत्न किया है।

रामकथा के लिए वे कहते हैं कि उससे कलियुग के प्रभाव के कम होने के साथ विवेक भी बढ़ता है-

रामकथा कलि पन्नग भरनी । पुनि विवेक पावक कहं अरनी ।।

यही कारण है कि तुलसीदास जी ने मानस में आध्यात्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक विचारों आदि के बारे में उपयोगी मार्गदर्शन दिया है। उन्होने सर्वत्र विवेक को जाग्रत करने पर जोर दिया है। राम के साथ तदाकार वृत्ति, फिर उससे विरक्ति का उदय और तब विवेक की जाग्रति तथा अंत में तीनों के एकमेव स्वरूप में विराट चिति में समर्पित होने का भाव तुलसी दास जी जन-जन में जाग्रत करना चाहते थे। मानस के प्रारम्भ में ही उन्होने लिखा है-

राम भगति सुर सरितहि आई । मिली सुकीरति सरजु सुहाई ।।

सानुज राम समर जसु पावन । मिलेउ महानद सोन सुहावन ।।

जुग बिच भगति देवधुनि धारा । सोहति सहित सुबिरति विचारा ।।

त्रिविधि ताप त्रासक तिमुहानी । राम स्वरूप सिंधु समुहानी ।।

तुलसीदास जी हर व्यक्ति को सीमित रूप में नारायण मानते थे। उन्होने नर और नारायण दोनों की प्रतिष्ठा के लिए जीवन-भर काम किया। मानव की महत्ता, शक्ति और विश्वास को जगाने के उद्देश्य से ही उन्होने कहा -

मोरे मन प्रभु अस विस्वासा । राम के अधिक राम कर दाता ।

इस तरह के मानस में बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जिनसे साधारण व्यक्ति को प्रतीति होती है कि वह भी मानवीय भावनाओं का विकास कर सकता है।

एक संदर्भ में गोस्वामी जी से कहलाया है कि 'सम्मुख होय जीव मोहिं जबहीं।' जनम कोटि अघ नासहुं तबहीं । । इस तरह उन्होने व्यक्ति को उसके उत्कर्ष के लिए पूरी तरह आवश्स्त किया है। शर्त केवल यही है कि वह व्यक्ति राम में पूरी आस्था रखता हो और कपटरहित व्यवहार वाला हो। राम का कहना था कि "मोहि कपट छिल-छिद्र' न भावा।' राम की कृपा से विभीषण में इतना आत्मवल पैदा हो गया कि वे युद्ध-क्षेत्र में रावण को फटकराते हैं और उस पर गदा से प्रहार भी करते हैं। देखकर शिवजी ने कहा-

उमा विभीषनु रावनहि, सन्मुख चितब कि काउ ।

सो अब भिरत काल ज्यों श्री रघुवीर प्रभाउ ।।

इसी तरह सुगरीव बालि के डर से अपने बहादुर साथियों के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर अपने दिन काट रहा था, परन्तु राम की कृपा का प्रसाद पाकर वही सुग्रीव बालिके महल तक जाकर उसे युद्ध के लिए ललकारने लगता है।

राम की कृपा पाने के लिए स्वामीजी बार-बार मनुष्य को प्रेरित करते हैं? वे कहते हैं कि मनुष्य का शरीर दुर्लभ है। वह 'मोक्ष का द्वार' है। नर तन पाकर मनुष्य को परमार्थ प्राप्त करने में समर्थ होने की शक्ति अर्जित करनी चाहिए।

वैदिक युग में आर्यो ने जिस गरिमापूर्ण संस्कृति की स्थापना आत्मवादी चिन्तन के माध्यम से प्रतिष्ठित की थी, तमाम समय गुजर जाने के बाद भी महात्मा तुलसीदास ने उसे उसी रूप में क़ायम करने का काम किया। उस गरिमा की पुनर्प्रतिष्ठा उन्होने 'राम चरित मानस' के माध्यम से बड़ी निष्ठा के साथ की। उन्होने इसके अतिरिक्त कई बुनियादी जीवन-मूल्यों और उन पर आधारित व्यवहारों की भी स्थापना की है।

ब्रह्म की शक्तियों के रूप में देवोपासना वैदिककाल से चली आ रही है। मनुष्य और उपासना द्वारा देव जाति को प्रसन्न करता है। देव-वर्ग उसके विघ्न नाश और मंगल संपादन में सहायक होता है। अंध-विश्वास यह नहीं है, बल्कि ऋंषियों का सोचा-समझा और अनुभवसिद्ध विधान है। तुलसीदास को देवकृपा का अच्छी तरह अनुभव था। इसीलिए रामचरित मानस में उन्होने देवोपासना के परम्परागत स्वरूप को महत्व दिया है। यही नहीं, ब्रह्म-भावना से जोड़कर उसे नया स्वरूप प्रदान कियाहै।

राजा जनक की पुत्री सीता विवाह के पूर्व जब गौरी पूजन करने जाती हैं, तब पूजा-स्तुति में लीन सीता को गौरी केवल शिव की पत्नी पार्वती या शिव-शक्ति नहीं प्रतीत होती हैं, बल्कि वे उन्हें आदि शक्ति के रूप में मालूम पड़ने लगती हैं (तभी जनक-पुत्री) सीता कहने लगती हैं-

जय-जय गिरिवरराज किशोरी । जय महेश मुख चंद चकोरी ।।

जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ।।

नहिं तब आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाउ बेद नहिं जाना ।

भव भव विभव पराभव कारिनि । बिस्व बिमोहनि स्ववस बिहारिनि ।।

तुलसीदास जी का मानना था कि ब्रह्म का साक्षात्कार पाने के लिए देवोपासना जरूरी है। उसके बिना रामभक्ति भी कठिन है। वे स्वयं राम से कहलवाते हैं कि "शंकर भजन बिना नर भगति न पावै मोर।" इसका अर्थ ही यह है कि शंकर की उपासना से ही रामभक्ति प्राप्त होती है। "विनय पत्रिका" में प्रत्येक देवता से वे राम-भक्ति प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

तुलसीदास जी ने वर्ण-व्यवस्था को समाज के लिए हितकर माना है। वेद के पुरुष-सूक्त में ब्रह्म से ही चातुर्वर्ण्य की अभिव्यक्ति मानी गयी है। तुलसीदास जी वर्ण-व्यवस्था के लोप हो जाने से वर्णशंकर होने को चिन्ता का विषय मानते थे, परन्तु वे सौजन्य-सौहार्द्र पर आधारित वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर थे। उनके समय के अनुरूप इसके सिवा अन्य कोई विकल्प नहीं था।

शबरी और निषाद के प्रति राम के व्यवहार में किसी तरह का भेदभाव नहीं था। निषाद भरत को भाई जैसा प्रिय था। गुरु वसिष्ठ ने निषाद को स्वयं को गले लगाया था। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि संत तुलसी को ऊंच-नीच की भावना बिल्कुल पंसद नहीं थी। वे जाति-पांति की भी परवाह नहीं करते थे। वर्ण-व्यवस्था पर उनका जोर देना इसलिए था कि जिससे व्यक्ति अपने-अपने सामाजिक-आर्थिक दायित्व का पालन सही ढंग से करे। अपने सामाजिक दायित्व का पालन करने वाला उस समय दंड का पात्र माना जाता था। आश्रमों के विषय में भी उनकी यही राय थी। वे इस वैदिक मत को पूरी तरह मानते थे कि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ब्रह्मचर्य, विद्योपार्जन, फिर गृहस्थ धर्म का पालन, फिर वानप्रस्थ, और अंत में सन्यास आश्रम के जीवन का निर्वाह हो सके। उनकी राय में यही मार्ग जीवन को श्रेय की ओर ले जाने वाला था।

वैदिक युग की तरह आगे भी मां के गर्भ से ही जीव का संस्कार करना शुरू होकर मृत्यु के उपरान्त अंतिम संस्कार किया जाता है। प्राचीन काल में इन संस्कारों के प्रति लोगों में बड़ी श्रद्धा थी। आज भी आस्था है, परन्तु पहले जैसी नहीं। गोस्वामीजी ने इन संस्कार-विधियों और उनके साथ अनेक व्रत-उपवासों को भी महत्व दिया है। इनके मूल में भारतीय तत्व-चिंतन आज भी उसी प्रकार काम कर रहा है। ये कोरी कल्पना से नहीं गढ़े गये हैं। सामूहिक जीवन पर इनका प्रभाव पड़ताहै।

राम के जन्म लते ही गुरू बसिष्ठ को खुलाकर जातकर्मों को सम्पन्न कराया गया। राजा के ब्राह्मणों को बहुमूल्य चीजें दान की। सारा नगर उत्सव में डूब गया। इसी तरह आगे चलकर राम का चूड़ाकर्म संस्कार, नामकरण-संस्कार, फिर यज्ञोपवतीय संस्कार विधिवत् कराये गये। फिर वे गुरु के घर जाकर अध्ययन करने लगे। इनक सबका मूलोद्देश्य बालक चाहे राजा का हो या प्रजा का, उसे समाज से जोड़ने के लिए, उसमें सहयोग और सहकारिता की भावना पैदा करने के लिए समूह जीवन जीने का रास्ता समझाया गया था।

इसी तरह गोस्वामी जी ने राम-विवाह में भी सामूहिक आनंद और सामाजिकता की परंपरा का सुंदर वर्णन किया है। आज भी विवाह के समय भोजन करते हुए बारातियों को मांगलिक गाली-गीतों की परम्परा है। उसे सुनकर बाराती नाराज नहीं होते, बल्कि आनंद का अनुभव करते हैं। राम के विवाह में जब बाराती भोजन कर रहे हैं, उसका मनोहारी वर्णन है-

जेवत देहिं मधुर धुनि गारी । लै लै नाम पुरुष अरु नारी ।।

समय सुहावनि गारि बिराजा । हसंत राउ सुनि सहित समाजा ।।

यह परम्परा आनन्द के अलावा आपत्ति के समय भी कायम रही है कि सुख और दुःख साथ-साथ समूह में बिताये गये हैं। राजा दशरथ के राज-परिवार पर जब राम के राजतिलक को लेकर संकट आया, तब सारे अयोध्यावासियों ने मिलकर उसमें भाग लिया। उस समय राज-परिवार अकेला नहीं था, सारी जनता उसके साथ थी। अयोध्या और मिथिला के नागरिक ही नहीं, राम के वन-गमन के समय रास्ते में निषादराज, गांवों के नर-नारी, बनवासी कोल-किरात, मार्ग के बटोही आदि सभी ने हार्दिक संवेदनाएं व्यक्त की थीं। गोस्वामी जी ने इन सभी प्रसंगों का मानस में जीवन्त वर्णन किया है।

उनका ऐसा वर्णन करने का उद्देश्य यही था कि वे जाति-पांति, धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री-पुरुष, सम्य-असम्य आदि के सारे भेदों से ऊपर उठकर दूसरे के दुःख में सहयोग प्रदान करने वाली मानवीय संवेदना की व्यापकता, गहराई और पवित्रता को उजागर करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। पराये दुःख में दुःखी होना औंर सुख में सुखी हीना, संत चेतना का प्रमाण है।

जब राम वन से लौटते हैं, तो समस्त राज-परिवार के साथ पूरा जन-समुदाय उल्लास से भर उठता है। मानवी स्तर से प्रजा के उल्लास और आनंद का मनोहारी वर्णन गोस्वामी जी ने किया है। वे लिखते हैं-

समाचार पुरबासिन्ह पाये । नर अरु नारि हरषि सब धाये ।।

जै जैसेहिं तैसेहिं, उठि धावहिं । बाल वृद्ध कह संग न लावहिं ।।

तुलसीदास जी ने मानस के माध्यम से व्यक्ति को सामूहिक-सामाजिक जीवन जीने की प्रेरणा दी है। सर्वत्र सामाजिक मर्यादा का पालन किया। इसीलिए उन्हें मर्यादावादी और राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है।

संत कवि तुलसीदास

युग पुरुष महात्मा तुलसीदास की कृतियाँ अपने समय की सीमा में ही बंधी न रहकर ऐसी कई शताब्दियों से समाज को सद्प्रेरणा देकर अनुप्राणित ही नहीं करती आ रही है, बल्कि हर युग में दिशा-बोध भी कराती आ रही है। यह उस संत महाकवि की बहुत बड़ी देन है। वरना देखा जाता है कि रचनाकार के समय के साथ ही उसकी रचनाएं भी पुरानी पड़ जाती है। परन्तु महात्मा तुलसीदास की रचनाएं इसीसे कालजयी हो सकीं कि उनमें सुखी, शान्त, सदाचारी और समृद्ध समाज की लोकमंगलकारी कामना की गई है।

तुलसीदास अपने समय की समाज की दुर्दशा और शासकों की विलासिता को देखकर खिन्न हो उठे और उसे मिटाकर आदर्श समाज की स्थापना के लिए कृत संकल्प होकर 'रामचरित मानस' जैसे अमर ग्रंथों की रचना की। अपने आध्यात्मिक चिन्तन की सामाजिकता के कारण ही उन्होंने सगुणोपासना का प्रतिपादन किया। राम के मर्यादापूर्ण, शक्तिशाली, शीलवान, सुन्दर स्वरूप का जीवन्त निरूपण कर उन्होंन समाज के लिए उसे अनुकरणीय बना दिया।

उन्होंने भक्ति को ही सबसे बड़ा स्थान दिया है। इसीलिए उनका आध्यात्मिक चिन्तन ईश्वर के प्रति समर्पण-भाव से अनुप्रेषित है। भक्ति के बिना सभी निरर्थक हैं। सभी लौकिक सफलताओं के लिए भक्ति आवश्यक है। दार्शनिक विवादों में पड़ना उनकी दृष्टि में व्यर्थ था। उनकी राय में सारे भ्रमों को तोड़कर केवल भक्ति ही का मार्ग सर्वोपरि है :

'एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास ।।

भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता समन्वय की भावना रही है। विभिन्न संस्कृतियों का यहां आगमन होता रहा है और वे आपस में घुल-मिलकर एक होती चली गई हैं। हमारी उदार संस्कृति ने हमेशा बाहर की दार्शनिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक विचारधाराओं को अपनी कसौटी पर परख कर उन्हें स्वीकारा है। यह समन्वय की भावना का ही परिणाम रहा है। हमने हमेशा विविधता में एकता और विषमता में समता लाने का प्रयत्न किया है।

तुलसीदास ने जनता की भाषा के माध्यम से उसी भारतीय समन्वय का दर्शन कराया। उनका यह कवित्वमय भक्ति-दर्शन लोकप्रियता का अद्वितीय नमूना सिद्ध हुआ। उनमें भक्त के निष्काम हृदय और समाज-सुधारक की 'लोकमंगल-भावना का अपूर्व समन्वय था। उनकी समन्वय साधना बहुमुखी है।

मानव शरीर बड़े ही भाग्य से प्राप्त होता है। उसे पाकर भी जो व्यक्ति ऊंचे आदर्शों और लक्ष्य की ओर अग्रसर नहीं होता, वह अभागा है। भगवान राम से ही उन्होंने कहलवाया है-

बड़े भाग मानुष तन पावा । सुर दुर्लभ सदग्रन्थहि गावा ।

साधन धाम मोच्छ कर द्वारा । पाइ न जंहि परलोक संवारा ।।

सो परम दुःख पावइ सिर धुनि-धुनि पछिताई ।

कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ ।।

सत समागम के समान संसार में दूसरा दुख नहीं है। तुलसी की दृष्टि में समृद्धशाली होना सुख का चिन्ह नहीं है। वे संतों के मिलन को ही सर्वाधिक सुख मानते हैं। संतों का स्वभाव ही परोपकार करना है। दूसरों के लिए दुःख सहना उनकी प्रवृत्ति है। पर असंत दूसरों को दुःखी करने के लिए भी कष्ट सह लेते हैं। उन्होने कहा ह -

संत सहहिं दुख परहित लागी
पर दुख हेतु असंत अभागी
सन इव खल पर बंधन करई
खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई

तुलसीदास जी का पुरुषार्थ पर भरोसा अधिक है, भाग्यवाद पर उनका विश्वास बहुत कम है। समुद्र पार करने के लिए जब राम समुद्र से मार्ग देने के लिए प्रार्थना करते हैं, तब वे लक्ष्मण से कहलवाते हैं-

नाथ दैव कर कवन भरोसा । सोखिज सिन्धु करिअ मन रोसा ।

कादर मन कहुं एक अधारा । दैव-दैव आलसी पुकारा ।

और जब तीन दिन तक लगातार प्रार्थना करने पर भी समुद्र ने प्रार्थना अनसुनी कर दी, तो राम ने लक्ष्मण से कहा-

लछिमन बान सरासन आनू । सोखो बारिधि विसिख कृसानू ।।

तुलसीदास भाग्यवाद को पूर्णतया इसलिए नहीं नकार पाते कि ईश्वर-बुद्धि से कर्म करने वाले जीव को पुरुषार्ष की सफलता पर अहंकार नहीं होता और उसकी असफलता पर कुंठा नहीं होती।

इसी प्रकार सम्पूर्ण रामचरित मानस पारिवारिक आदर्शों और मंगलकारी कामनाओं से भरपूर है। प्रसंगानुकूल सभी स्थानों पर तुलसीदास जी लोक मंगल अधिकार है। रामचरित मानस का प्रारम्भ जिस मंगल वाक्य से हुआ है, उसी में शब्दार्थ संगठन की चेतना निहित है-

वर्णानामर्थसंघानां रसानां कून्दसामपि ।

मंगलानां च कर्तारो बन्दे वाणी विनायको ।।

तुलसीदास की भक्ति-साधना में दास्य-भाव है। भरत-चरित के माध्यम से उन्होने संकेत किया है-

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद प्रेम अबसि होइ भव रस बिरति ।।

सीय राम पद प्रेम दास्य-भाव से ही सम्बन्ध रखता है। दास्य भाव अथवा सेव्यसेवक भाव एक ही है-

सेवक सेव्य भाव विनभव न तरिय उरगारि ।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त विचारि ।

महाकवि तुलसीदास का कथन है कि सच्चे भक्त के लिए जरूरी है कि राम उसे प्रिय लगे और वह राम को प्रिय लगे, तभी भक्ति की साधना पूरी होती है। हनुमान राम के अनन्य भक्त हैं। वे राम को प्रिय हैं और राम उन्हें। जब मां सीता जी को यह बात मालूम पड़ती है, तो वे परम प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद देती हैं-

आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बलसील निधाना ।।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू । करहुं बहुत रघुनायक छोहूं ।।
करहुं कृपा प्रभु अस सुनि कानां च । निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ।

हम पाते हैं कि तुलसी की समस्त भक्ति साधना अत्यन्त सहज और सरल है। उनके लिए घर-संसार छोड़ने की भी जरूरी नहीं है। घर में गृहस्थी चलाते हुए भी व्यक्ति राम की आराधना कर सकता है। केवल आवश्यकता है सच्चे-सहज और पवित्र-मन से प्रभु का स्मरण करने की। वे कहते हैं-

सूधे मन सूधे वचन, सूधी सब करतूति ।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति ।।

इस प्रकार हम उनके काव्य में सर्वत्र सीधा और सहज रूप पाते हैं। भक्त को अपने आराध्य की कृपा पाने के लिए केवल पवित्र और शुद्ध मन की आवश्यकता है।

तुलसी-साहित्य के प्रचार-प्रसार की आज उस समय और भी अधिक आवश्यकता महसूस हो रही है, जव हमारा जीवन हर क्षण अपने संस्कारों से च्युत होता जा रहा है।

हम देख रहे हैं कि आज पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण में डूबा हमारा भारतीय समाज विश्रृंखलित होता जा रहा है। इस अंधानुकरण से हमें उबारने का काम तुलसी का साहित्य ही कर सकता है। वह हमें हर कदम पर अपनी संस्कृति से जोड़े रहकर कर्तव्य-बोध कराता चलता है।

अध्यात्म रामायण में राम-स्वरूप में तत्व-दर्शन

पहला काव्य अध्यात्म रामायण है, जिसमें राम के स्वरूप पर तात्विक दृष्टिसे विचार किया गया है। मूल-चेतन्य-तत्व के नरोत्तम रूप एवं मनुष्य के परमार्थिक रूप के बीच के अन्तर भेद को मिटाकर परात्पर ब्रह्म, जीबात्मा और जगत् तीनों इकाइयों में भेद मिटाने का प्रयास ही अध्यात्म रामायण का मूल विषय है।

ग्रंथ के प्रारम्भ में ही पार्वतीजी महादेव जी से राम के सनातन तत्व के विषय में पूंछती है कि यदि राम अपने परात्पर रूप को जानते थे, तो उन्होने सीता के लिए क्यों विलाप किया और यदि वे आत्म-स्वरूप को नहीं जानते थे, सामान्य जन थे, तो उन्हें 'सेव्य' कैसे कहा जा सकता है?

उनको उत्तर देते समय शंकर जी राम के तात्विक रूप का विवेचन करते हुए कहते हैं कि राम निश्चित रूप से प्रकृति के गुणों से परे परमात्मतत्व, अनादि, आनन्दस्वरूप एवं पुरुषोत्तम हैं। उन्होने ही सारी सृष्टि को उत्पन्न किया है और उसके बाहर-भीतर आकाशसे परिव्याप्त हैं। राम आत्म-रूप से सबके अंतःकरण में स्थित होते हुए भी अपनी शक्ति माया से इस चराचर विश्व का संचालन कर रहे हैं। जिस प्रकार चुम्बक के पास होने से लौहखंड में गति पैदा हो जाती है, उसी प्रकार परमात्मतत्व राम की निकटता से यह जगत गतिशील है। जैसे सूर्य में अंधकार नहीं रह सकता, वैसे ही राम में अविद्या की स्थिति नहीं होती। राम दैदीप्यमान सूर्य हैं, उनमें रात-दिन की ज्ञान-अज्ञान की स्थिति नहीं है।

अध्यात्म रामायण में राम के सम्पूर्ण मानवचरित को आभास-चेतन मानकर परात्पर ब्रह्म में उसका अध्यारोप किया गया है। यद्यपि राम अपने परब्रह्म रूप की बात नहीं कहते, पर उनके सम्पर्क में आने वाले ज्ञानी उनके परात्पर रूप को पहचानते हैं। माता कौशल्या भी उनके परात्पर रूप को पहचानती हैं। इस विषय के तीन रूप अध्यात्म रामायण में प्रस्तुत किये गये हैं।

1. राजकुमार राम सुंदर संस्कारों से सम्पन्न होकर माता, पिता, गुरुजन तथा पुरवासियों को सुख पहुंचाते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा और अहिल्या का उद्धार करके भगवान शंकर के विशाल धनुष को तोड़ते हैं। योगमाया सीता से विवाह कर गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं। नारद से कहते हैं- "हे मुनिवर! हम जैसे विषयासक्त मनुष्यों के लिए आपका दर्शन दुर्लभ है।' परन्तु नारद और वसिष्ठ जैसे ज्ञानी लोग राम के इस रूप से भ्रमित नहीं हैं। गुरु वसिष्ठ स्वयं कहते हैं कि मैं पूर्ण रूप से जानता हूं कि आप साक्षात् परमात्मा ही हैं।

2. दण्डकारण्य ऋषि भूमि ही थी। अनुसूया, अत्रि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्स्य आदि परमज्ञानी ऋषि हैं, वहां राम का मानव रूप बिल्कुल ही अन्तर्ध्यान हो जाता है। यहां तक कि रावण भी उनके असली स्वरूप को पहचानता है।

3. सीताजी राम की योगमाया थीं। 'राम-राज्य' की स्थापना हो जाने के बाद उनकी कोई जरूरत नहीं थी, अतः राम ने उनका त्याग कर दिया और वैराग्य धारण कर लिया। उनके इसी अंतर्मुखी जीवन से 'रामगीता' का सृजन हुआ।

'राम गीता' कहा गया है- 1. संसार का मूलकारण अज्ञान है। 2. अज्ञान का विनाश ज्ञान से ही हो सकता है। 3. कर्म भी अज्ञान से उत्पन्न है, अतः वह अज्ञान का विरोध करने का साधन नहीं हो सकता। 4. कर्म से शरीर में अभिमान पैदा होता है, अभियान के नष्ट होने पर ही ज्ञान संभव है। 5. परमार्थ तत्व एकमात्र 'ज्ञान-स्वरूप', 'निर्मल' और अद्वितीय है। 6. जीवात्मा (प्रत्यक्) अंतःकरण का स्वामी है और परमात्मा परोक्ष (इन्द्रियातीत) है। 7. यह विश्व ही परमात्मा स्वरूप है, अज्ञान के कारण इन दोनों की भिन्न प्रतीति होती है।

अध्यात्म रामायण का उद्देश्य 'वेदान्त-ज्ञान' की राम-कथा के माध्यम से व्याख्यायित करना है। पार्वती, हनुमान तथा लक्ष्मण इस ज्ञान के माध्यम हैं। महादेव और राम ब्रह्मनिष्ठ गुरु हैं, जो स्वयं प्रकाश अनंत ब्रह्म रूप राम में अज्ञान तथा तज्ञन्य सचराचर विश्वमय राम के रूप से भासमान मानव रचित अवस्तु के भ्रमजाल-अध्यारोप का विनाश करके विज्ञासु अधिकारी लक्ष्मण आदि को परात्पर ब्रह्म-सत का साक्षात्कार कराते हैं।

ब्रह्मनिष्ठ महादेवजी जिज्ञासु पार्वती जी को तत्वमसि के तत् और त्वम् पदार्थों को समझाकर ब्रह्म के अखंड अर्थ का बोध करा देते हैं। सम्पूर्ण रामायण में राम साध्य हैं, साधन भी राम हैं और साधक भी राम हैं। इस प्रकार राम के माध्यम से अध्यात्म रामायण में पूर्ण शांकर अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है।

अध्यात्म रामायण में राम-स्वरूप का सार इस प्रकार है-

1. राम ज्ञानस्वरूप है।

2. निर्गुण, निराश्रम, आनन्द रूप और निर्विकल्प राम अपनी माया से सृष्टि का सृजन करते हुए निर्गुण से सगुण हो जाते हैं। अवतारी होकर भी राम सृष्टि से परे हैं, क्योंकि राम पर कर्मों का आरोप तो अज्ञान है।

3. राम विष्णु हैं। विष्णु त्रिगुणात्मिकता माया का आश्रय लेकर सृजन संहार आदि कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, परन्तु उनमें लिप्त नहीं होते।

4. परमात्मा राम सृष्टि की उत्पत्ति और समाप्ति लिए ही ब्रह्म, विष्णु, रुद्र आदि विभिन्न रूपों में प्रवर्तित होते हैं।

5. माया के दो रूप हैं- विद्या और अविद्या। विद्या का जन्म मनुष्य के अंतःकरण में बिना राम की भक्ति के नहीं होता। राम के साकार रूप के दर्शन नवधा भक्ति द्वारा ही संभव है।

अध्यात्म रामायण में ही राम के स्वरूप के तत्व-दर्शन का विवेचन सर्वप्रथम प्राप्त होता है।

रामचरित मानस में लोक चेतना

अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में तुलसीदास जी ने रामचरित मानस जैसे कालजयी ग्रंथ का प्रणयन किया था। परन्तु उनकी प्रतिभा और जागरूकता शायद उन कठिन परिस्थितियों की ही देन है। बचपन में ही उनके भीतर अवतारी राम के प्रति अटूट विश्वास का बीजारोपण हो गया था। आगे चलकर वही उन्हें ब्रह्मज्ञान और ब्रह्म-दृष्टि प्राप्त कराने में समर्थ हुआ। तुलसीदास जी ने अपने समय के लिए तथा भविष्य के लिए जो जनमानस में चेतना का संस्कार बोया, वह उनकी अद्भुत देन युगों-युगों के लिए है। अपने तत्व-चिन्तन को उन्होंने मानस के माध्यम से जो व्यावहारिक रूप दिया, वह लोकमंगलकारी है, उसी ने उनकी इस कृति को अमर बनादिया।

तुलसी ने अपने समय के समुदाय के लिए जो बातें कही हैं, वे आगामी समय के समुदाय के लिए भी उतनी ही समीचीन है। वे कुछ ऐसी बातें भी कह गये हैं, जो शायद वर्तमान में अनुकूल न लगें, पर समय के अनुरूप उन पर विवेकपूर्वक हमें विचार करना चाहिए। रामायण लिखने का तुलसीदास का उद्देश्य ही केवल यही था कि समुदाय और समाज का युगानुरूप मार्ग दर्शन हो। रूढ़िवादिता के वे स्वयं विरोधी थे। वे जीवन-भर ढोंगियों से जूझते रहे। इसलिए यह जरूरी है कि हम तुलसीदासजी के लोकचेतना विषयक प्रयत्न को गहराई से और विवेक से समझने की कोशिश करें।

जब कभी राजसत्ता कमजोर हो जाती है अथवा स्वार्थ लोलुप तथा अत्याचारी हो जाती है, जब जनता में आतंक और असुरक्षा की भावना पैदा हो जाती है और जनता ऐसी अवस्था में स्वयं को असहाय अनुभव करने लगती है। परिणाम यह होता है समाज में चरित्रहीनता का बोलबाला हो जाता है। जनता के सामने तब दो ही विकल्प रह जाते हैं। एक तो वह भ्रष्टाचारियों और अत्याचारियों के सामने झुक जाये और स्वयं भ्रष्टाचारी बनकर अत्याचारियों का आतंक बर्दाश्त करे अथवा उनका विरोध करे और उनके दमन का शिकार बने। दूसरा यह कि चुपचाप अत्याचार सहती रहे, पर न भ्रष्ट हो और न विरोध करे, पर अपना निजत्व खो बैठे। तुलसीदास का युग राजसत्ता की दृष्टि से एकदम विपन्न था। इसी का रास्ता उन्हें निकालना था।

भारतीय राजा और रजवाड़े तो किसी सीमा मर्यादा का पालन करते भी थे, परन्तु जब विदेशियों ने सत्ता हथिया ली, तो उनका शासन जनता के हित में न होकर, राजा और उसके नौकरशाहों के ऐश्वर्य के लिए काम करने लगा था।

मुसलमान शासक अपने पैर जमा रहे थे। अकबर और हुमायूं ने अपनी सत्ता जमा ली थी। तुलसीदासजी उनके शासनकाल में प्रजा पर होने वाले अत्याचारों पर बारीकी से नजर रखे हुए थे। उस काल में सत्ता की छीना-छपटी में न कोई मर्यादा रह गयी थी और न आदर्श। मानवीय संवंधों को ताक पर रख दिया गया था। इसका प्रभाव परिवारों और समाज पर बुरा पड़ रहा था। अनुशासन नाम की कोई चीज नहीं रह गयी थी। तालुकेदारों और जमींदारों में बढ़ती जा रही विलासप्रियता भारतीय नारियों के लिए असम्मानजनक थी। शासक क्रूर और विलासी बन गये थे।

अकबर के समय थोड़ा सुधार हुआ भी, पर चरित्रिक पतन यथावत् बना रहा। गोस्वामी जी ने इससे क्षुब्ध होकर राजनीतिक दुर्दशा का वर्णन अपनी अन्य रचनाओं में तो किया ही है, रामचरित मानस में भी कुछ संकेत दिये हैं।

राजनीतिक आकाओं से पीड़ित जनता को उस समय के धार्मिक पंडित भी आत्म संबल नहीं प्रदान कर पा रहे थे। चारों ओर अव्यवस्था का बोलबाला था। धर्म भी स्वार्थसिद्धि का माध्यम बन गया था। तभी गोस्वामी जी ने लिखा था- बेचहिं वेद धर्म दुहि लेंही। यह तीखा प्रहार गोस्वामी जी द्वारा पंडों-पुरोहितों पर था। धर्म अपने गौरव से च्युत होने लगा था। गोस्वामी ने धर्म की इस दयनीय स्थिति का स्पष्ट वर्णन किया है-

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रंथ ।
दंभिन्ह निज मति कल्पकरि प्रकट हुए बहु पंथ ।।

समाज में लोगों की आर्थिक स्थिति दयनीय होती जा रही थी। केवल चाटुकार और सामंत मालामाल हो रहे थे। परिश्रमी जनता की गाढ़ी कमाई अधिकारी हड़प जाते थे। दरिद्रता के कारण जनता का मनोबल टूटने लगा था। कई बार वर्षा के अभाव में उन्हीं दिनों अकाल की स्थिति पैदा हो जाती थी। जनता भुखमरी का शिकार हो जाती थी। लोक जीविका विहीन होकर एक दूसरे से कहते-कहां जाई का करी। कुकर्मों की बाढ़-सी आ गयी थी। पैट भरने के लिए लोग अपनी संतानें तक बेचने लगे थे।

समाज व्यक्तियों से बनता है। उसके अधि संख्य लोग जो आचरण करते हैं, वही उस समय का सामाजिक आचार माना जाता है। भारत का सामाजिक जीवन प्राचीनकाल से ही मर्यादा-पूर्ण और व्यवस्थित रहा है। तमाम झंझावातों के बीच वह अपनी मूलभूत विशेषतायें कायम रखे हुए रहा है। काम और अर्थ परिवार-व्यवस्था के दो आधार होते हैं। वर्णाश्रम व्यवस्था को हमारे चिन्तकों ने बनाये रखा और समाज को नष्ट होने से बचाया।

परन्तु तुलसीदास जी के समय पर वह सारी व्यवस्था चरमरा उठी। राजनीतिक, धार्मिक और धार्मिक-क्षेत्रों में अनाचार और शोषण आदि के कारण जीवन की मर्यादायें ध्वस्त होती जा रही थीं। स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार बढ़ रहे थे। स्त्रियां भी पुरुषों के प्रति उपेक्षा का भाव रखने लगी थीं। नकली साधु-संन्यासियों और भ्रष्ट पुजारियों के कारण आश्रमों पर से जनता का विश्वास उठ गया था। उस समय तुलसीदास ही ऐसे समर्थ पुरुष थे, जिन्होने अपनी रचनाधर्मिता के बल पर तमाम अभावों के बावजूद भी लोक चेतना को जगाने का सफल प्रयास किया।

अपने अमर ग्रंथ 'रामरचित मानस' में प्रारम्भ में ही 'खलों' से परिचय करा दिया है। संतों के लक्षण बताकर उन्होने ढोंगी साधुओं से सतर्क रहने की चेतावनी भी दी है। उन्होंने कहा-

बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा।
खाहिं महा अहि हृदय कठोरा।।

ऐसे लक्षण बताकर उन्होने दुष्टों से जनता को सावधान कर दिया है। उस समय के विकृत समाज के मानस के संस्कार को सुधार कर उसकी नयी श्रेयस्कर चेतना को जगाना ही उनका प्रयास था। मानस ने उस समय पतित होते जा रहे समाज के लिए उनके प्रयास ने संजीवनी का काम किया।

स्वामीजी ने रामचरित मानस में आदर्श राज्य-व्यवस्था, आदर्श सामाजिक आचरण, आदर्श धार्मिक भावना और आदर्श मानवता के चित्र प्रस्तुत करके अपने समय को प्रेरित किया और उसमें उन्हें सफलता मिली। संत तुलसीदास द्वारा रामराज्य का आदर्श प्रस्तुत करना उनकी बहुत बड़ी देन है। उन्होंने मानस के माध्यम से जनता में इतना आत्मबल भर दिया कि वह विदेशी सत्ता से टक्कर लेने के लिए जागरूक हो उठी। उन्होंने जनता को आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा देकर उसमें लोकचेतना का संस्कार भरने का कारगर प्रयत्न किया। उन्होंने केवल उपदेश को ही प्रधानता नहीं दी, वैसा जीवन जीने के लिए भी प्रेरित किया। अपनी बात को मानस के माध्यम से उन्होंने घर-घर पहुंचा दिया।

उन्होंने मोह को अव्यवस्था की जड़ माना। उनका कहना था कि आदिकाल से मोह अव्यवस्था को सुव्यवस्था और सुव्यवस्था को अव्यवस्था में बदलता आ रहा है। यही उसके दुःखों का कारण भी है। प्रकृति के लिए वे कहते थे कि प्रकृति कभी एक व्यवस्था को स्वीकार नहीं करती। उसके गुणों में निरन्तर बदलाव आता रहता है। गुणों के सामने जीवन विवश रहता है। उसके गुणों के कारण कभी वह ज्ञानी बनता है और कभी मूढ़ बन जाता है।

नित युग धर्म होंहि सब केरे ।
हृदय राम माया के प्रेरे ।।
सुद्ध तत्व समता विग्याना ।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ।।

गोस्वामी जी ने माया की शक्ति की बात मानस में कई जगह कही है। इसलिए उनके अनुभव में था कि अंतर्चेतना को जगाये बिना बाहरी अव्यवस्था दूर नहीं की जा सकती है। राम के राजगद्दी पर बैठाने के समय जो विघ्न पैदा हुआ, वह मोहजनित ही था। परन्तु चौदह साल के वनवास के बाद जब पुनः राज्याभिषेक का समय आया, तब अयोध्यावासियों की चेतना का परिष्कार हो चुका था। इसका कारण था भरत का त्याग और जनता के अन्तःकरण का योगदान। उसमें 'सानुजराम समर जस पावत' का संस्कार था। सभी जन भेदभावों से ऊपर उठ चुके थे। 'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध' सभी मनस्वी थे।

दंड जतिन कर भेद जहं नर्त नृत्य समाज ।
जीतहुं मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज ।।

अवतार पुरुष राम के आचरण, शील, वल और प्रताप के प्रभाव से सुसंस्कृत हुई व्यक्ति एवं समुदाय की चेतना और लोक-चेतना के कारण सुंदर व्यवस्था स्थापित हुई। अवतार पुरुष राम की गुणवत्ता का वर्णन करके लोक-चेतना को संस्कारित करने का काम करना ही रामचरित मानस का उद्देश्य रहा है। उसमें भाई-भाई, पिता-पुत्र, स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी, व्यक्ति-समाज के परस्पर आचरण के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दायित्वों के महत्वपूर्ण बोध का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त जीवन के हर क्षेत्र के लिए यह ग्रंथ मार्गदर्शक के रूप में काम करता है। महात्मा तुलसी की यह बहुत बड़ी देन है कि यह ग्रंथ वर्षों से समाज में गुण, शील, एकात्मता, आशा, उल्लास का संचार करनें और राह दिखाने का काम करता आ रहा है। आगे भी युगों-युगों तक यह ग्रंथ विश्व में सद्गुणों के संवाहक का काम करेगा। क्योंकि अब इसका अनुवाद भारतीय ही नहीं, तमाम विदेशी भाषाओं में भी हो चुका है।

संत तुलसी द्वारा लोकचेतना जगाकर संसार को इस ग्रंथ के द्वारा भारत ही नहीं, विश्व को संस्कारित करने का यह कार्य उनकी महत्वपूर्ण देन है। इसीलिए महात्मा तुलसी की गणना युगचेता और युग पुरुष के रूप में की जाती है। सारे विश्व में वे आदरणीय हैं, वंदनीय हैं।

रामभक्ति का प्रसार और प्रभाव

राम के चरित्र और उनके आदर्श मर्यादा पालन ने उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के रूप में जनमानस में प्रतिष्ठित कर दिया। वे राजपुत्र से पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तम से विष्णु और विष्णु से परात्पर ब्रह्म के पद पर समाइत हो गये। इसमें कितना समय लगा और इसका प्रारम्भ कब से हुआ, यह कहना कठिन है। रामावतार के प्रतिपादक वाल्मीकि रामायण में कई प्रसंग आते हैं। कुछ विद्वान् उन्हें आदि रामायण का मूलवंश नहीं मानते। किन्तु इस समय के बहुत पहले लिखे गये महाभारत में राम के अवतार की चर्चा जगह-जगह मिलती है। उसके परवर्ती साहित्य हरिवंश, विष्णु, वायु, भागवत आदि ग्रंथों में भी राम विष्णु के अवतार माने जाते हैं। आठवीं सदी के पूर्व लिखी गयी पांचरात्र संहिताओं में राम के साथ उनके तीनों भाइयों- भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी अवतार की कोटि में रखा गया है।

यहां तक कि आध्यात्मिक साहित्य के अलावा राम को लौकिक काव्यों में भी विष्णु का अवतार माना गया है। अभिषेक नाटक, रघुवंश, हनुमन्नाटक और जानकीहरण में उनकी विष्णु से निकटता दर्शायी गयी है। उनके अवतार को लोक के आग्रह का कारण बताया गया है। वास्तव में उनके प्रति गहरी पूजा भावना ने उन्हें अवतारी पुरुष होने की इतनी जबरदस्त आस्था जगा दी कि पूरा राम चरित ही अवतारी ब्रह्म की लोकलीला के रूप में चित्रित किया जाने लगा। इसी भावना के कारण रामभक्ति निरन्तर जनमानस में गहरी आस्था और विश्वास पाती गयी।

रामभक्ति के सूत्रों का अध्ययन करने से पता चलता है कि विष्णु का अवतार माने जाने से पहले राम की आराधना वीर-पूजा के रूप में होती आ रही थी। प्रारम्भ राम के प्रति जो श्रद्धा के भाव लोगों में पैदा हुए आगे चलकर वही भक्ति भाव में बढ़ते गये। उनके प्रति श्रद्धा गहरी भक्ति में परिवर्तित होती गयी।

यह सही है कि रावण पर विजय पाने में उनके सहायक वानर हनुमान और राक्षस विभीषण के मानस में सबसे पहले राम के भक्ति का भाव पैदा हुआ। रामायण और महाभारत के बाद गुप्तकाल में राम की उपासना के व्यापक संकेत मिलते हैं। रामावतार के पहले लोक कल्याण के लिए देवताओं द्वारा विष्णु से शरीरधारण करने की प्रार्थना पूरी तरह भक्तिमूलक है। कालिदास के मेघदूत में रामगिरि आश्रम के 'जनकतनयास्नान पुण्योदकेषु' और रघुपति-पदैरंकितमेखला' के वर्णन में कवि की हार्दिक रामभक्ति परिलक्षित होती है। यह भी पता चलता है कि उस समय रामगिरि एक प्रसिद्ध तीर्थ था।

कालिदास के समकालीन चंद्रगुप्त द्वितीय की पुत्री और वाकाटक कुल की राश्र महिषी प्रभावती गुप्ता (पांचवीं शती) के 'भगवतरामगिरि स्वामिन्' की आराधिका होने के प्रमाण मिलते हैं। रामभक्ति की परम्परा के प्रचलित होने के प्रमाण 8 वीं शती के पांचरात्र-संहिताओं में भी मिलते हैं।

जैसे-जैसे राम के प्रति भक्ति की भावना बढ़ती गयी, वैसे-वैसे उनकी मूर्तियों और मंदिरों के निर्माण का कार्य भी शुरू हो गया। राममूर्ति और रामतीर्थ के उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यामी और दूसरी शताब्दी में उत्कीर्ण नासिक के गुफालेख में पाये जाते हैं। परन्तु उन्हें यह कहना मुश्किल है कि वे दशरथ के राम के ही लिये हैं या अन्य के लिए। क्योंकि प्रसंग अट-पटे हैं। राम की मूर्तियों का सबसे पहले वर्णन चौथी शताब्दी में मत्स्य पुराण में मिलता है। इसके बाद राममूर्तियों का उल्लेख 5 वीं शताब्दी में व राहमिहिर ने वृहद्संहिता में किया है। इससे यह पता चलता है कि गुप्तकाल से राम की मूर्तियों का निर्माण और उनकी पूजा-अर्चना वैष्णवों में शुरू हो चुकी थी। धीरे-धीरे राम की पूजा का आकर्षण दिनों-दिन बढ़ता गया। आगे चलकर 8 वीं शताब्दी में राम की उपासना का रूप व्यष्टिपरक हो गया। अवतार के रूप में पूजे जाते रहने पर भी शिव और कृष्ण की भांति राम को आधार मानकर किसी सम्प्रदाय की स्थापना के प्रमाण इस समय तक नहीं मिलते।

उसके बाद में विकसित वैष्णवों के चार सम्प्रदायों श्री सनक, ब्रह्म और रुद्र में रामभक्ति के सूत्र पहले और तीसरे में पाये जाते हैं। उनकी साम्प्रदायिक परम्परा का विकास भी इन्हीं दो में हुआ। रामानन्दीय सम्प्रदाय का उदय भी श्री सम्प्रदाय से हुआ। इस सम्प्रदाय के लोग अपनी गुरु-परम्परा का आरम्भ शठकोप आलवार से मानते हैं। इनका समय नवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध माना जाता है। राम भक्ति के साम्प्रदायिक विकास की शुरुआत इसी समय से हुई।

वैष्णव भक्ति आलवारों की जीवनव्यापी साधना और अमृतमयी वाणी से सिंचित होकर 10 वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते शरणदायी कल्पतरु की तरह विकसित हो गयी। इनमें पांचवें शठकोप नम्मालवार थे। इन्होंने अपनी रचना तिरिवायभोली में दशरथ के राम की अनन्य शरणागति का प्रथम बार उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि इन्होने अपनी साधना स्थली तिरुपति में राम की एक मूर्ति स्थापित की थी।

प्रसिद्ध है कि महाकवि कंवन की रामायण पर श्रीरंगनाथ की स्वीकृति तब तक प्राप्त नहीं हुई, जब उन्होने उसके मंगलाचरण में शठकोप की स्तुति से अपनी वाणी पवित्र नहीं कर ली। राम की उपासना में शठकोप का विशेष महत्व था। छठवें आलवार मधुर कवि अपने गुरु की तरह ही कट्टर रामभक्ति थे। इन्होने कुछ समय तक अयोध्या रहकर राम की उपासना और सरयू-रूझान का भी लाभ लिया।

मधुर कवि के उत्तराधिकारी केरल के चेरवंशी राजा कुलशेखर थे। वे अत्यन्त भावुक थे। एक वार रामकथा में खरदूषण की सेना द्वारा असहाय राम-लक्ष्मण पर आक्रमण का प्रसंग सुनकर राम की सहायता के लिए अपनी सेना को तुरन्त कूच करने का आदेश दे दिया था। इसी श्री और ब्रह्म सम्प्रदाय में भी राम की उपासना के संस्कार उनकी स्थापना के प्रारम्भकाल से ही पाये जाते हैं।

मुख्यतः देखा जाये तो राम की उपासना की अखण्ड परंपरा की स्थापना का श्रेय मुख्यतः श्री सम्प्रदाय के आचार्यों को ही है। 13 वीं शती के अंत तक वैष्णव-भक्ति का केंद्र दक्षिण भारत ही रहा। उत्तर भारत में यह धारा 14 वीं शती के प्रारम्भ से आयी। उसे उत्तर भारत में लाने का श्रेय स्वामी राघवानंद को है। इनका आविर्भाव स्वामी रामानुजाचार्य की तेरहवीं पीढ़ी में हुआ था। इन्होंने उत्तर भारत के प्रमुख रामतीर्थो- अयोध्या, प्रयाग, चित्रकूट की यात्राएं की। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के अग्रदूत स्वामी रामानंद इन्हीं के शिष्य थे।

स्वामी रामानन्द का आगमन युगान्तरकारी घटना है। अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व से उन्होंने विजेता मुसलमानों द्वारा सताये हिन्दुओं के जीवन में नयी आशा का संचार किया। उन्होंने उनके कष्टों का अनुभव किया और उन्हें मिटाने का भरपूर प्रयास किया। उन्होंने समानता की आवाज उठायी और छोटी जाति वालों को भी द्विजों की तरह ही आध्यात्मिक साधना का अधिकारी घोषित किया। इतना ही नहीं, बलपूर्वक हिन्दू से मुसलमान बनाये गये लोगों को रामतारक मंत्र की दीक्षा देकर पुनः हिन्दू बनाने का काम किया। इससे लोगों में आत्मविश्वास पैदा हुआ और हिन्दु समाज की निराशा दूर हुई।

श्री सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य 'भक्ति' का अधिकारी केवल उच्च वर्ग का व्यक्ति ही हो सकता था। निम्न वर्ग के लोग 'प्रपन्न' मात्र हो सकते थे, भक्त नहीं। परन्तु स्वामी रामानन्द ने भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। यह उनका क्रान्तिकारी कदम था। श्री सम्प्रदाय में ही उन्होंने अपनी सामाजिक और धार्मिक योजनाओं को व्यावहारिक रूप देने के लिए विरक्त रामभक्तों का एक संगठन बनाया, जो बाद में रामावत, बैरागी और रामानन्दी नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन्होने उत्तर भारत में अयोध्या, चित्रकूट, मिथिला और प्रयाग में इसकी शाखायें स्थापित की। साधुओं के अखाड़े कायम किये और उन्हें शस्त्र-प्रयोग तता मल्लयुद्ध की शिक्षा देने की व्यवस्था की। जिसके कारण मठ-मंदिरों और आचार-विचार की रक्षा के लिए हिन्दू समाज को मुस्लिम आतंकादियों के व्याप्त भय से निजात मिली।

रामभक्ति को व्यापकता प्रदान करना, उनका दूसरा महत्वपूर्ण कार्य था। उनके प्रयत्न से निर्गुण-सगुण रामभक्ति दोहरे पथवाली गंगा के दरस-परस-मज्जन और पान का अवसर प्राप्त हुआ। लोक मानस इससे पूरी तरह संतुष्ट और लाभान्वित हुआ। उनके शिष्यों-अनंतानन्द तथा कबीर तथा उस परम्परा के भक्तों ने दोनों पद्धतियों को अपनाकर देशव्यापी प्रचार किया। दुनिया के धार्मिक इतिहास में एकसाथ दो भिन्न साधना पद्धतियों का प्रवर्तक ऐसा आचार्य शायद ही मिले। दोनों को मानने और प्रचार करने वाले इन्हीं के रामभक्त शिष्य थे। यही कारण था कि निर्गुण और सगुण दोनों में माधुर्य और रसिक-भक्ति को व्यापक मान्यता मिली। कबीर ने 'राम की बहुरिया' एक रूप में प्रियतम से रहस्य-मिलन की इच्छा व्यक्त की, यह स्वकीया भाव के अनरुप है। यह बात भी ध्यान योग्य है कि कृष्ण भक्त संप्रदायों में मान्य परकीया-भाव के स्थान पर राम की उपासना में स्वकीया-भाव को उचित मानकर आचार्य चरण ने रामावत-संप्रदाय की श्रृंगारी शाखा में मर्यादा और सदाचार पालन पर जोर दिया।

समकालीन राम-भक्ति साधना इससे अत्यधिक प्रभावित हुई। तुलसीदास की गीतावली और बरवै रामायण में माधुर्य के प्रसंगों से पता चलता है कि उन्होंने उसी प्रभाव के कारण मर्यादावादी राम-भक्ति-साधना में माधुर्य-प्रसंगों को अपने पूर्व के आचार्यों की भांति मर्यादित रखा। युगदृष्टा महाकवि तुलसीदास ने रामभक्ति के सेवा में प्रगतिशील तथा उदार विचारों को स्थान दिया।

आज भी देशव्यापी रामलीलाओं के आयोजन, उसके अखंड पाठ, हनुमान चालीस का नियमित पारायण, रामकथा के वाचकों की बढ़ती लोकप्रियता राम-भक्ति के निरन्तर बढ़ते प्रभाव के प्रमाण हैं।

राम : मध्यकाल के काव्य में

राम को विष्णु का अवतार भी माना जाता है। रामकथा में राम नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। राम के रूप में वाल्मीकि ने मानव के शाश्वत आदर्श को चित्रित किया है। उनमें उन्होने लौकिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है, तो दूसरी ओर साम्प्रदायिक्ता मूल्यों का भी विवेचन किया है।

वे हिन्दी साहित्य में दोनों रूपों में वर्णित हैं। लौकिक रूप में वे मानव के आदर्शों के प्रतिपालक हैं, तो अलौकिक रूप में वे विष्णु के परात्पर ब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित हैं और उनकी मानवी लीलाओं का गुणगान भक्त कवियों ने किया है। उनके दुष्ट दमनकारी लोकरंजक मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का चित्रण अधिकांश में किया गया है। इसके साथ ही राम की माधुर्य भावना का भी विकास हुआ है। मध्यकाल में भक्ति से ओत-प्रोत साहित्य खूब लिखा गया। जिसमें राम के लौकिक और अलौकिक दोनो रूपों का चित्रण मिलता है।

मध्यकाल की राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था से जब हिन्दू समाज स्वतंत्र हो उठा, तब उसे रामके रूप में समर्थ आश्रय मिला, जो उसके सोये और खोये हुए गौरव को फिर से जाग्रत कर उसे लौकिक और आध्यात्मिक दोनों तरह की सुरक्षा के लिए आश्वस्त कर सका। इसी कारण के व्यापक रूप का वर्णन मध्यकाल में मिलताहै।

प्रारम्भ के हिन्दी साहित्य के क्षत्रियत्व के आदर्श रूप का वर्णन मिलता है। पृथ्वीराज रासों में राम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों का उल्लेख है। रासो साहित्य में राम शूरता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार अन्य भक्त कवियों ने उनका विभिन्न रूपों में वर्णन किया है।

परन्तु मध्यकालीन राम-साहिंत्य के सभी उल्लेख तुलसीदास की तेजस्विता के सामने गौण हो जाते हैं। तुलसीदास जी संस्कृति की लौकिक और आध्यात्मिक परम्परा के योग्यतम अधिकारी हैं। संस्कृत साहित्य तक आते-आते राम विष्णु के अवतार के रूप में मान लिये गये थे, पर तुलसीदास ने और आगे बढ़कर राम को त्रिदेवों के भी ऊपर पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है। उनको उन्होने अधर्म क नाश और धर्म की संस्थापना हेतु जन्म लेने वाला बताया है-

जब-जब होइ धरम के हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ।

तब तब धरि प्रभु मनुज शरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्ञन पीरा ।

मानस की कथा संवाद रूप में है। सती, याज्ञवल्क्य, गरुड़, कागभुशुंडि सभी ने प्रश्न उठाया है कि क्या राम के रूप में अभेद ब्रह्म ने ही नर देह धारण किया है। सभी का समाधान है कि ब्रह्म ने भक्तों के प्रेम के वश होकर सगुण रूप ग्रहण किया है। दशरथ सुत राम के रूप में रूप, गुण, आकार रहित मुनियों के ज्ञान का विषय, वेदों का वर्ण्य ब्रह्म की अवतरित हुआ है-

जेहि इमि गावहिं बेद बुध, जाहि धरहिं मुनि ध्यान ।

सोइ दशरथ सुत भगत हित, कौसलपति भगवान ।।

राम स्वयं अपने को सृष्टिकर्ता बताते हैं। रामचरित मानस में राम के इस विशुद्ध बोध विग्रह का वर्णन है-

मम माया संभव संसारा, जीव चराचर विविध प्रकारा ।

राम का ब्रह्म रूप सामर्थ्यवान है। इसी के कारण दास्य-भाव की भक्ति उन्हें अधिकप्रिय है। असमर्थ जीव समर्थ राम के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है। राम को सेवक ही सबसे अधिक प्रिय है-

पुनि-पुनि सत्य कहऊं तोहि पाहीं । मोहिं सेवक सम कोउ प्रिय नाहीं ।

राम ने राक्षसी अत्याचारों से त्रस्त पृथ्वी के उद्धार हेतु अवतार धारणा किया था। इसी के लिए उनके व्यक्तित्व में लोकरंजन प्रधान है। राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे। पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के सभी क्षेत्रों में उन्होने मर्यादा के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। उनमें वह धीरता-गंभीरता थी कि कहीं भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं मिलता।

राज्याभिषेक के आदेश पर उनका भ्रातृतप्रेम जागृत हो उठता है- "विमल बंस यह अनुचित एकू, बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।" बन जाने का आदेश पाकर भी वे समूह भाव के प्रतीक हैं- "मुख प्रसन्न मन राग न रोसू।' व्यवहार में कभी भी अतिक्रमण नजर नहीं आता।

राम का राज्य आदर्श राज्य था। लोग आज भी रामराज्य के शब्द को अच्छे राज्य के पर्याय के रूप में उपयोग करते हैं। वहां सारी प्रजा वेदपथनिरत थी। दैहिक, दैविक, भौतिक किसी तरह का संकट नहीं था। वे सबके विश्वासपत्र थे। सभी उन पर पूर्ण विश्वास करते थे। इसीलिए उन्हें शरणागत वत्सल कहा जाता है। राम अवतारी महापुरुष थे और उनकी सम्पूर्ण लीला अवतारी लीला थी। ऐसी स्थिति में राम को प्राप्त करने का एकमात्र साधन अनन्य शरणागति ही है। केशव की 'रामचंद्रिका' में भी राम को अवतार के रूप में स्वीकारा गया है। केशव ने राम को अवतारी माना है, परन्तु मानवी रूप में राजाओं के ऐश्वर्य-भरे जीवन की तरह उन्हें चित्रित किया है।

शरणागत-वत्सलता तथा भक्तवत्सलता केशव के राम में भी हैं, किन्तु उनके राम के प्रति पात्रों के मनोभाव भक्ति प्रधान नहीं है। राम के राज्याभिषेक के बाद देवता आकर रामराज्य की मंगल कामना और राम की स्तुति तो करते हैं, पर रामकृपा के लिए याचना नहीं करते।

सेनापति ने राम को विष्णु का अवतार माना है, परन्तु उनमें पूर्व की परम्परा जैसी मर्यादा का अभाव है। राम ने एक पत्नीव्रत क़ा आदर्श कायम रखा है, किन्तु उसका कारण राम की दृढ़ता के बजाय, सीता का अतुलनीय सौंदर्य बताया गया है। उनका कहना है-

सेनापति राम एक नारी व्रतधारी भयो,
सो तो न बड़ाई रघुवीर धीरताई की ।
जा पर गंवारि देव नारि-वारि डारी सो तौ,
महिमा अपार सिय रानी की निकाई की।

इन पंक्तियों में सेनापति पर रीतिकालीन प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।

16 वीं शताब्दी के बाद के साहित्य में राम का चरित्र माधुर्य-भावना से ओत-प्रोत होता गया। मर्यादावादी राम के साथ ही उनकी भक्ति में माधुर्य-भावना का विकास होता गया। उसे ही रैसिक सम्प्रदाय कहा गया है। वैसे इसके सूत्र काफी पहले से ही उपलब्ध रहे हैं। वाल्मीकि रामायण में भी इस प्रकार के वर्णन कई स्थानों पर उपलब्ध हैं।

रसिक-सम्प्रदाय के भक्तों में श्री अग्रदास जी, श्री नामादासजी, महात्मा बाल अली, महात्मा कृपानिवास जी, श्री युगलनारायण हेमलताजी, महात्मा बनादासजी, श्री रस-रंगमणिजी, श्री ज्ञान अली 'सहचरि' आदि मुख्य हैं।

माधुर्य भाव की उपासना का प्रभाव मध्यकाल में दूसरे कवियों पर भी था। कई विद्वानों का कहना है कि तुलसीदास जी की दास्य-भाव की भक्ति के भीतर भी कमोबेश माधुर्य भाव निहित है। गीतावली के कई पदों में श्रृंगार का वर्णन मिलता है? उससे सिद्ध होता है कि तुलसीदास जी का बाह्य (साधक) रूप मर्यादावादी दास्य-भाव का था, परन्तु आन्तरिक (गुह्य) रूप लीला-विलासी साधक का ता।

कृष्ण-भक्ति कवियों- मीराबाई, नन्ददास, परमानन्ददास आदि- ने भी माधुर्य-भक्ति-परक रचनाएं लिखी हैं। एक स्थान पर मीराबाई ने कृष्ण की ही तरह राम के ऐश्वर्यमय रूप की शयन-लीला का वर्णन किया है-

मंदिर पौढ़ाए रघुराई ।

कंचन के महल, कंचन की दुनिया रेशम वान लगाई ।

फूलन सेज फूलन के गेंदवा, फूलन लूंब लगाई ।

चौवा चंदन अगर कुमकुमा केसरी अंग लपटाई ।

सीताराम दोउ संग पौढ़े, वलि जाए मीरावाई ।

मध्य कालीन साहित्य राम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों से भरा है। शक्ति, शील तथा सौन्दर्य के रूप में उनका वर्णन लौकिक है। वे शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापक रूप में दिखाये गये हैं। परन्तु अलौकिक रूप में उनका महत्व और भी अधिक है। वहां वे पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप में मान्य हैं। इसी प्रकार एक ओर जहां श्रोत-स्मार्त परम्परा दुष्टों का दमन करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम पूर्ण परात्पर ब्रह्म के रूप में देखती है, वहीं रसिक सम्प्रदाय के लोग उनके रूप में पूर्णब्रह्म के नित्य-रसमय-रूप का साक्षात्कार करते हैं।

कम्ब रामायण

तमिल भाषियों की मान्यता है कि जैसे भगवान विष्णु ने मंदरांचल पर्वत के द्वारा महासिन्धु का मंथन करके देवताओं की रक्षा के लिए अमृत उपलब्ध कराया था, उसी तरह महाकवि कम्बन ने अपनी जिह्वारूपी मन्थन-यष्टि का उपयोग कर तमिल वाङ्मयरूपी महासिन्धु का मंथन करके रामकथा का अमृत-घट तमिलभाषियों को उपलब्ध कराया, उसकी रचना में उन्हें सात वर्ष लगे।

तमिल में रामकथा का व्यवस्थित और विस्तृत लेखन महाकवि कम्बन ने ही किया और उसे उन्होने इस पूर्णता तक पहुंचाया कि आगे कोई भी कवि उनके समान रामायण की रचना करने में समर्थ नहीं हो सका।

महाकवि कम्बन ईस्वी सन् की नवीं शताब्दी में हुए थे। उनका जन्म तमिलनाडु में तत्कालीन-चोल राज्य तिरुवलुन्दर (जिला तंजाउर) नामक स्थान में आदित्यन् नामक पुजारी के घर में हुआ था। उनकी वंश-परिवार के बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। चोल और चेर राजाओं के राज-दरबारों में महाकवि के रूप में उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त था। फिर भी वे तिरुवेण्णेयनल्लूर राज्य के अधिपति शड्यघवल्लर के आश्रित रहे।

चोल राजा कट्टर शैव थे। कम्बन वैष्णव थे। पहले तो राजा ने उनकी प्रतिभा से प्रवाहित होकर उन्हें सम्मान दिया, पर बाद में कहते हैं कि उसने उन्हें शैव-वैष्णवों के कट्टर परस्पर विरोध के कारण हटा दिया।

कम्ब-रामायण की रचना पूरी होने पर श्री रंगम् के प्रसिद्ध क्षेत्र तथा मंदिर में पहली बार इसे सुनाया गया। वहां उपस्थित विद्वत्मंडली ने इस ग्रंथ-रत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसके रचयिता महाकवि कम्बन को 'कवि चक्रवर्ती' की सम्मानित उपाधि से विभूषित किया। जिस तरह महात्मा तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' बाल्मीकि रामायण का भाषान्तर नहीं है, उसी परकार कम्ब रामायण तमिल भाषा में रचित राम-कथा का एक स्वतंत्र ग्रंथ है। परन्तु कम्बन ने इसे वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही इसके पदों की रचना करने की बात स्वयं स्वीकार की है।

कम्ब रामायण 10,000 पदों या 40,000 पंक्तियों का एक विशाल ग्रंथ है। कम्ब का उद्देश्य तमिलभाषी जनता को राम का विस्तृत परिचय कराना था। इसीलिए उन्होने रामायण के प्रसंगों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। यह ग्रंथ कलेवर की दृष्टि से बाल्मीकि रामायण से भी बड़ा है।

महाकवि कम्बन के पूर्व ही अवतार-परम्परा और रामनान की महिला का प्रादुर्भाव हो चुका था। अतः कम्बन के श्रीराम साक्षात् क्षीर-सागर में शयन करने वाले सर्वेश्वर नारायण ही हैं। उनके पावन नाम के जप से लाखों लोग भवसागर से पार हो गये हैं। श्रीराम के ईश्वरत्व को महाकवि ने प्रारम्भ से अंत तक धूमिल नहीं होने दिया। उदाहरणार्थ वे सीताहरण प्रसंग में एक स्थान पर लिखते हैं-

"स्वर्ण-मृग का पीछा करने के लिए श्रीराम ने अपने उन्हीं चरणों का संचालन किया, जिनका उपयोग उन्होने वामनावतार में त्रिलोकों को नापने के लिए किया था। महाकवि ने राम के मानवोचित रूप की कहीं भी उपेक्षा नहीं की। सीताहरण का राम की विरहविदग्धा, दशरथ-मृत्यु पर शोक-विह्वलता, लक्ष्मण-मूर्च्छा के समय उनका विलाप साधारण मनुष्य की सहज भावाभिव्यक्ति है। वास्तव में कम्बन के राम नर-नारायण की झिलमिल छवि हैं। उनके राम अत्यन्त कोमल हृदय हैं। वे न तो सीता का पैदल चलना बर्दाश्त कर पाते हैं और न लक्ष्मण का कुटी बनाते समय श्रम करना। वे कहते हैं : "आह ! क्या सुकुमारी जनकतनया के पुष्पों से भी कोमल चरण बन के कंटकाकीर्ण पथ पर चलने के योग्य हैं? राजकुमार लक्ष्मण के मृणाल से कोमल हाथ पत्थर ढोने योग्य हैं ? विषम काल की गति किसे नहीं निस्सहाय दशा में ले जाती। उसे कौन-सा कार्य है जो नहीं करना पड़ता?"

उसी प्रकार इंद्रजित्-शक्ति से लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर राम साधारण मनुष्य की तरह गंभीर रूप से व्यथित होकर स्वयं अचेत हो जाते हैं और होश आने पर लक्ष्मण की नासिका पर हाथ रखकर श्वास की गति, वक्षस्थल से कान सटाकर हृदय-स्पन्दन की गति तथा चरणों की उष्णता का निरीक्षण करते है और लक्ष्मण की छाती से चिपटकर हृदय-विदारक विलाप करते हैं। कवि ने तमिल संस्कृति की दृष्टि से भी कहीं-कहीं कथानक में कुछ परिवर्तन किये हैं।

सरलता और प्रेम पर तो राम निछावर हैं। गुह के सरल प्रेम से गद्गद् होकर राम उसे सीता और लक्ष्मण का परिचय देते हैं। वे कहते हैं- "यह तुम्हारा भाई है और यह भाभी ।" और टिप्पणी करते हुए फिर कहते हैं - "हम चार भाई थे, अब पांच हो गये।"

उनके इस प्रेमपॉश की परिधि बढ़ती ही जाती है। वे विभीषण से कहते हैं - "गंगा तट पर निषादराज (गुह) से मिलने पर हम चार से पांच भाई हो गये, सुग्रीव छठां और आप सातवें भाई हैं।" उनकी परिधि की कसौटी जाति-वर्ण-गुण भी नहीं है, वे तो केवल सहज-सरल प्रेम के भुखे हैं। ऐसा प्रेम उन्हें चाहें मनुष्य से मिले अथवा वानर या राक्षस थे।

राम और सीता का परस्पर प्रेम अलौकिक और अनिर्वचनीय था। महाकवि कम्बन ने उनके मधुर दाम्पत्य जीवन का स्पष्ट उल्लेख न करके संकेत से ही उसका चित्रण किया है। सीता के अंगों का वर्णन भी वे प्रतीकों के माध्यम से करते हैं। गंगा-तट पर खड़े हुए सीता और राम पक्षियों के कल्लोल और सरोवर में खिले हुए कमलों को देखते हैं- तभी वे परस्पर एक-दूसरे के अंग-प्रत्यंगों की सुकुमरता का स्मरण करते हैं- सीता को जल में कमल-पुष्प राम के चरणों की सुदंरता चुराकर छिपे हुए जान पड़ते हैं और नील कमलों को देखकर राम को सीता के नील-फील से विशाल नेत्रों का स्मरण हो जाता है। राम के लिए सीता अरुन्धती जैसी पवित्र और अमृत जैसी मधुर हैं। उनकी अनुपम सुन्दरता का अभिचित्रण हो ही नहीं सकता।

वास्तव में कम्बन में ऋषि प्रवृत्ति जगी हुई थी-सौन्दर्य और श्रृंगार का बोध जीवन को आनंदित करने के लिए है- अंगों का वासनाजन्य प्रदर्शन तथा कामजन्य चेष्टाएं जीवन को सौंदर्य और श्रृंगार के शिखर से अंधेरी खाइयों में धकेल देती हैं।

राम शरणागत वत्सल हैं। शरणागत होकर जब विभीषण उनके पास आते हैं, तो सुग्रीव आदि उनको सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। तब राम कहते हैं- ''मेरा ऐसा निश्चय है कि यदि मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु का हत्यारा भी निराश होकर मेरी शरण में आ जाये तो उसको भी मैं अपना प्रेमी मित्र ही मानूंगा, चाहे वह मुझे धोखा ही दे।''

वस्तुतः संदेहशीलता ने ही लोगों को विश्वासघाती बनाया है। जब तक हम विश्वास करना नहीं सीखेंगे, लोगों की संदेहशीलता की प्रवृत्ति के बिनाश का प्रश्न ही नहीं उठता।

राम के मन में द्वेष और रोष की गंध भी नहीं है। रावण-वध के पश्चात् जब दशरथ स्वर्ग से श्रीराम की विजय पर प्रसन्नता प्रकट करने के लिए लंका में पधारे, तब राम उनसे अपनी मृत्यु के समय कैकेयी और भरत को दिये हुए उनकेशाप का स्मरण दिलाते हैं तथा उन्हें शॉपमुक्त करने की कातर प्रार्थना करते हैं।

धर्म और वीरता के क्षेत्र में तो कम्बन के राम बाल्मीकि के राम के अनुरूप आदर्श मानव है, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, जबकि तुलसी के राम साक्षात् ब्रह्म हैं। कम्बन ने अपने राम को नारायण और सीता को लक्ष्मी के अवतार के रूप में चित्रित किया है। कम्बन के लक्ष्मण भी तुलसी के लक्ष्मण की तुलना में अधिक नीतिकुशल लगते हैं। वे माया-मृग के पीछे जाने से स्वयं राम को यह कहकर रोकते हैं कि यह कपट मृगहै।

राक्षसों के चरित्र-चित्र में भी कम्बन ने विरल सहानुभूति का परिचय दिया है। एक ओर तो वे खुलकर राक्षसों की आलोचना करते हैं, तो दूसरी ओर उनके मानव-सुलभ भावों का अच्छा चित्रण करने में वे पीछे नहीं रहते। इसलिए उनका वर्णन औरों की अपेक्षा स्वाभाविक और संतुलित है। बाल्मीकि का अनुसरण करने पर भी कम्बन के पात्रों के चरित्र-चित्रण में मौलिकता का परिचय दिया है। इतना ही नहीं, उन्होने रामकथा को तमिल प्रदेश की संस्कृति में ढाल कर उसे तमिल भाषियों की अपनी चीज बना दिया है। उनकी रामकथा में उस समय की सामाजिक रीति-नीति और रहन-सहन, आमोद-प्रमोद, लोकजीवन,लोकविश्वास आदि का अच्छा वर्णन मिलता है।

भारतीय संस्कृति के अतिथि-सत्कार के महत्व पर कम्बन ने जोर दिया है। तमिलनाडु के तीन फल आम, केला और पका कटहल मुख्य हैं। दक्षिण भारत में भोजनोपरान्त छाछ (मट्ठा) लेने की प्रथा आम है। इन सबका वर्णन उनकी रामायण में मिलता है। कम्बन के समय राजा और उनकी रानियों के चलते समय उनकी दास-दासियां उनका स्तुति-गान करते हुए आगे-आगे पुष्प बिखेरते चलते थे। सीताजी के चलते समय उनकी सखियों द्वारा पुष्प बिखेरते हुए कम्बन ने अपनी कथा में बताया है। वहां के संगीत और नृत्य का भी उन्होंने उसमें वर्णन किया है।

कम्बन के समय राजा ईश्वर का अंश माना जाता था, परन्तु कम्बन ने अपने काव्य में प्रजातंत्र का प्रबल समर्थन किया है। उनके समय के चोल नरेश कट्टर शैव थे और कम्बन वैष्णव थे। उस समय धर्मों में कट्टरता थी, सहिष्णुता का अभाव था। इसलिए चोल राजा इन्हें बर्दाश्त नहीं कर सका। परिणामतः कम्ब-रामायण के प्रचार में भी बाधा पड़ी। वैष्णवों ने भी कम्बन की उपेक्षा की। कयोंकि उनके अनुरूप कम्ब-रामायण में उन्हें साम्प्रदायिकता के दर्शन नहीं हुए। कम्बन बहुत ही उदार और मानवीय दृष्टिकोण वाले थे। इसलिए उन्होने शिव का सभी जगह आदरपूर्वक उल्लेख किया है। परन्तु यह बात वैष्णवों को अच्छी नहीं लगी। इसलिए जनसाधारण में उनकी रामायण का प्रचार जितना चाहिए था, उस समय नहीं हो पाया।

तमिल प्रदेश में कम्ब रामायण का अधिक प्रचार न हो पाने का एक और कारण यह भी था कि महाकाव्य होन के कारण उसकी उच्च कोटि की भाषा शैली एवं विशाल आकार जनसामान्य के लिए बोधगम्य न थी। वहां पहले से ही बाल्मीकि रामायण का अधिक प्रचार था। प्रवचनकार कहीं-कहीं कम्ब-रामायण का उल्लेख बोलते समय जरूर कर देते हैं, परन्तु स्वतंत्र रूप से कम्ब-रामायण पर नहीं बोलते।

धीरे-धीरे शिक्षा के प्रचार के कारण अव प्राचीन तमिल साहित्यके प्रति लोगों की रुचि पैदा होने लगी है। अव कम्ब-रामायण का पठन-पाठन शुरु हो गया है और उसकी उपयोगिता और गुण-ग्राहकता का मूल्यांकन होने लगा है।

वर्तमान रचनाकार और श्रीराम

1857 की क्रान्ति में भारत को भले ही पराजय देखनी पड़ी हो, पर भारतीय मुक्ति-चेतना की इस प्रक्रिया में एक नव-जागरण का उदय अवश्य हुआ। मध्यकाल की सामन्ती-संस्कृति की नींव हिल गयी और नये बौद्धिक युग का सूत्रपात हुआ। यह समय की मांग थी। यदि अंग्रेज भारत से न भी आते, तो भी यह क्रान्ति अवश्य होती। अंग्रेजों के अत्याचारों और शोषण-नीति ने उस क्रान्ति की आग में घी का काम किया। अंग्रेजों के आने के समय भारत के उद्योग धंधे उन्नत अवस्था में थे। परन्तु अंग्रेजी नीति ने उन्हें पूरी तरह नष्ट कर दिया। विदेशी पूंजी से नये धन्धे और उद्योग शुरू किये जाने लगे। बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था-

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।

पै धन विदेश-चलि जात, यहै अतिख्वारी ।।

इसी दौरान अंग्रेजों को सिर झुकाने वाला एक वर्ग शिक्षा के माध्यम से तैयार करने का उपक्रम भी शुरू हो गया । भाषा किसी भी देश संस्कृति एवं सभ्यता की संदेशवाहक होती है। परन्तु अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार के कारण भारत में अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति का प्रचार होने लग गया। फलस्वरूप अनेक भारतीय भौतिकवादी वौद्धिक संस्कृति के नशे में अपनी ही संस्कृति का तिरस्कार करने लगे।

परन्तु धर्म के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने, राजनीतिक में बाल गंगाधर तिलक ने तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द ने वैदिक-युग की सांस्कृतिक चेतना से युग चेतना को बनाये रखा। आर्य समाज का आन्दोलन एक 'राष्ट्रीय आंदोलन' के रूप में चला। जिसके कारण जनता में धार्मिक भावना से अधिक स्वदेशी और स्वराज्य की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। 19 वीं शताब्दी के सभी साहित्यकारों ने सामन्ती रूढ़ियों और संकुचित परम्पराओं में कैद भारत की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति के प्रगति गहरा रोष व्यक्त किया। इसके साथ ही वैदिक संस्कृति की गौरव-गरिमा को पुनः स्थापित करने का प्रयास भी किया। भारत की गौरवपूर्ण गाथा को गाने के प्रसंग में कवि भारत की शस्यश्यामला धरती के सैंदर्य पर मुग्ध हो जाता है। भारतेन्दु बाबू के समकालीन बद्रीनारायण चौधरी भारत की वंदना करते हुए गाते हैं-

जय-जय भारत भूमि भवानी ।

जाकी सुयश पताका जग के दसहूं दिसि फहरानी ।

सब सुख सामग्रीऋतु सकल समान सोहानी ।।

जा श्री सोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी ।

धर्मसूर जिन उयो नीति जहं गई प्रथम पहचानी ।।

मानव-रूप की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप 'रामायण', 'महाभारत' के पात्रों के अलावा अन्य आदर्श पुरुषों पर भी काव्य लिखे गये। मैथिलीशरण गुप्त ने 'रंग में भंग', 'विकट भट' तथा 'सिद्धिराज जयसिंह' आदि काव्य रचे। सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य विजय', गोकुल चंद्र शर्मा का 'प्रणवीर प्रताप', रामकुमार वर्मा का 'वीर हमीर' महत्वपूर्ण काव्य हैं।

नारी आन्दोलन भी इसी काल की देन है। वह केवल भोग्या नहीं है, उसका भी अपना व्यक्तित्व है। जीवन में वह पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर गृह-संसार की नाव को पार उतारती है। साकेत में सीता राम से कहती हैं-

नाथ न भय दो तुम हमको ।

जीत चुकी हैं हम यम को ।।

सतियों को पति संग कहीं ।

बन गया अनल अगम्य नहीं ।।

राम के त्याग को पूर्णरूपेण सफल बनाने के लिए दृढ़ संकल्प 'वैदेही वनवास' की सीता भी इन्हीं स्वरों में कहती हैं-

'उभरे कांटों में से ही, अति सुंदर सुमन चुनूंगी ।'

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के इस युग में आर्य-संस्कृति के महान-प्रतिष्ठापक राम से अधिक काव्य का दूसरा उपदान भी क्या सकता था। जब भी भारतीय जीवन की बात चलेगी, राम का नाम पहले आएगा। यही उनकी विराटता है। इस बात को ध्यान में रखकर जो काव्य लिखे गये, उनमें रामचरित उपाध्याय का 'राम चरित चिन्तामणि', शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' का 'राम तिलकोत्सव', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' और 'पंचवटी', अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'वैदेही वनवास', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का 'उर्मिला', डॉ० बलदेव मिश्र का 'कौशल किशोर' और 'साकेत संत' तथा 'रामराज्य' काव्य उल्लेखनीय हैं।

जिस समय भारत में नवीन राष्ट्रीय चेतना का जागरण हो रहा था, रूढ़ियों और व्यक्तिवादी विचारधाराओं की संकीर्णता से बाहर निकलकर भारत के सुनहरे सपनों को संजोने में साहित्यकार लगे हुए थे, उस समय हिन्दी-काव्य जगत में मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का आगमन हुआ। इन दोनों ने राष्ट्र में विकासोन्मुख सांस्कृतिक चेतना को नये छन्दों, नयी शैली तथा नयी भाषा में ढाला और नये रंगों से सजाकर उसे मां शारदा के मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया 'साकेत' और 'वैदेही वनवास' के प्रणयन की मूल प्रेरणा भी एक जैसी ही थी।

संस्कारों से संबंध रख ने वाली संस्कृति के लिए उच्च कोटि के विचारों की आवश्यकता होती है। क्योंकि संस्कृति मानव जीवन में उसके उत्थान के लिए एक स्वतंत्र इकाई होती है। वह त्याग, उदारता, सहानुभूति, प्रेम, करुणा और दया की जन्मदात्री होती है। साकेत के राम संस्कृति के मानदंड त्याग-तत्व को जीवन में सर्वोपरि मानते हैं। राम त्याग की भावना को सार्वजनिक रूप में दिखाई देना अनिवार्य मानते हैं। वे आतुर हैं उसके लिए-

त्याग प्राप्त का ही होता,
मै अधिकार नहीं खोता।
मुझको महामहत्व मिला,
स्वयं त्याग का तत्व मिला,
मां तुम तनिक कृपा कर दो,
बना रहे वह, यह वर दो।

त्याग के कारण ही भारत की संस्कृति संसार में हिमालय से ही ऊंची मानी जाती है। राम का सम्पूर्ण चरित्र ही त्याग की गरिमा से मंडित है। उनके त्याग को देखकर माँ सुमित्रा कहती हैं-

वत्स राम! ऐसा हो हो,
फल इसका कैसा ही हो।
लेकर उच्च हृदय इतना,
नहीं हिमालय भी जितना।

भारतीय संस्कृत्ति का मूल त्याग 'वैदेही वनवास' और 'साकेत' दोनों में राम के माध्यम से व्यक्त किया गया है। माता सीता का परित्याग लोकोपवाद के कारण हुआ था। उसके सिवा लोकोपवाद से बचने का कोई रास्ता नहीं था। परन्तु राम का त्याग सर्वथा स्वार्थों का त्याग है। वही बात 'वैदेही वनवास' में कहते हुए लोकाराधन के लिए वे कहते हैं-

त्याग करूं तब सबसे बड़ा, क्यों न मैं।
अंगीकृत है लोकाराधन जब मुझे।।

राम का वास्तविक रूप सामन्ती काल की भोगवादी प्रवृत्तियों में खो-सा गया था, वह इस काल की जीवन की त्याग और उदात्तवृत्ति के रूप में पुनः बहुत रूपों में अवतरित हुआ। भारतीय संस्कृति में भौतिकता से छुटकारा पाने के लिए ही अध्यात्म की प्रतिष्ठा हुई है। स्वार्थ की भावनाओं को परहित में परिणति व्यक्ति की समष्टि में व्याप्ति अध्यात्म से ही सम्भव है।

'वैदेही वनवास' में राम श्रेष्ठ राजा के रूप में स्थापित किये गये हैं। राजा राम के अच्छे कृत्यों से प्रजा के ताप और क्लेश शान्त हो जाते हैं। रामराज्य को सम्पन्न करने के लिए मानों सारे पर्वत ही पारसमणि बन गये हों और वसुन्धरा ने सारा स्वर्ण लुटा दिया हो। रामराज्य के पीछे न्याय, नीति, शासन और सुव्यवस्था के अलावा लोकाराधन का विशिष्ट हाथ है। अपने उत्तम गुणों के कारण राम पिता को बहुत प्रिय है। इसी के कारण वे राम को राजा बनाना चाहते हैं-

राज्य का अधिकारी है ज्येष्ठ,
राम में गुण भी हैं सब श्रेष्ठ ।

राम सामाजिक दायित्व, मर्यादा और नीति के प्रति निष्ठा रखते हैं। राम वन केवल इसलिए ही नहीं गये कि पारिवारिक गृह-कलह शान्त हो जायेगी, बल्कि वे इसलिए भी गये कि पिता ने समाज के समक्ष कैकेयी को जो वचन दिये थे, वे भी पूर्ण होंगे। राम के जीवन का ध्येय ही था कि धरा और धर्म के भय दूर हों। बनवास के कारण उन्हें यह अवसर सुलभ हो गया-

मुझे था आप ही बाहर विचरना ।
धरा का धर्म-भय था दूर करना ।

धर्म के माध्यम से व्यक्ति और समाज दोनों के अस्तित्व कायम रहते हैं। धर्म की स्थापना ही स्वस्थ समाज को जन्म देने के लिए हुई है। धर्म की स्थापना ने ही भारत की गौरव और गरिमा से युक्त परम्पराओं को जन्म दिया है। रघुकुल के राजाओं ने शत बार अश्वमेघ यज्ञ किये, पर उनमें इन्द्र का पद पाने की अभिलाषा कभी नहीं रही। निस्वार्थ कर्मों में आसक्ति इसी धर्म के स्वरूप की देन है।

'साकेत' की कथा रामराज्य की स्थापना से पहले ही समाप्त हो जाती है, परन्तु रामराज्य के आदर्शों की स्पष्ट रूपरेखा उसमें मिल जाती है। रामराज्य यद्यपि राजतन्त्र है, पर वह राजतन्त्र प्रजातंत्र के वर्तमान रूप के सिद्धान्तों पर आधारित है। राजा का चुनाव प्रजा करती थी। राजा प्रजा की बात की उपेक्षा नहीं करता था-

राजा हमने राम तुम्हीं को है चुना ।
करो न तुम यों हाय ! लोकमत अनसुना ।।

तुलसी और मैथिलीशरण गुप्त के राम में काफी कुछ साम्य है। आधुनिक परिप्रेक्ष्यों से जुड़े होने पर भी गुप्त जी ने राम के प्राचीन और सर्वमान्य स्वरूप को बिगड़ने नहीं दिया। तुलसी के राम तत्व रूप में सर्वव्यापी, अखंड और अनादि हैं, वहीं गुप्त जी के राम में भी वही गुण हैं। तुलसी के राम परम कृपालु हैं, वे साकार रूप ग्रहण करके नर लीलायें करते हैं-

एक अनीह अरूप अनामा ।

अज सच्चिदानन्द पर धामा ।।

व्यापक विश्व रूप भगवान ।

तेहिं धरि देह चरित कृत नाना ।।

सो केवल भगतन हित लागी ।

परम कृपालु प्रनत अनुरागी ।।

गुप्त जी के राम भी इसी स्वरूप के अनुरूप हैं। वे कहते हैं-

हो गया निर्गुण सगुण साकार है,

ले लिया अखिलेश ने अवतार है ।

किसलिए यह खेल प्रभु ने है किया?

मनुज बनकर मानवी का पय पिया?

भक्त-वत्सलता इसी का नाम है ।

तुलसी के राम भक्तों के प्रेम के कारण सगुण रूप धारण करते हैं, पर गुप्त जी के राम क्रांतिदर्शी हैं। वे स्वंय श्रद्धेय अथवा परम आराध्य बनकर ही भक्त और शरणागतों पर कृपा की वर्षा नहीं करते, बल्कि त्याग और अनुरागमय जीवन से समाज को एक नयी दिशा की ओर ले जाना चाहते हैं। वे अपने आदर्श, दिव्य और अलौकिक चरित्र द्वारा पृथ्वी पर ही स्वर्ग को उतार लाना चाहते हैं। वे कहते हैं-

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया ।

जन-सन्मुख धन को तुच्छ बताने आया ।

मैं आया उनके हेतु जो सापित हैं,

जो विवश, विकल, बलहीन, दीन शापित हैं।

भव में नव वैभव व्यांप्त कराने आया ।

सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ण का लाया ।

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।

इस तरह 'साकेत' और 'मानस' दोनों के राम मर्यादावादी हैं। तुलसी के राम ने रावण के अत्याचारों से दुःखी पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया था, किन्तु गुप्त जी के राम संहारात्मक वृत्तियों की अपेक्षा, सृजनात्मक वृत्तियों को प्रोत्साहन देते हैं। गुप्त जी की रुचि युद्ध के बजाय आर्य-संस्कृति के प्रसार में ज्यादा थी।

बालकृष्ण शर्मा नवीन का उर्मिला काव्य 1957 में प्रकाशित हुआ था। उसमें उन्होंने उर्मिला के माध्यम से नये युग का रेखांकन किया है। रामायण की कथा उसमें नहीं है। उन्होंने स्वयं लिखा है- ''मेरी उर्मिला में पाठकों को रामायणी कथा नहीं मिलेगी? रामायणी कथा से मेरा अर्थ है क्रम से राम-लक्ष्मण-जन्म से लगाकर रावण-विजय और फिर अयोध्या आगमन तक की घटनाओं का वर्णन। ये घटनायें भारत में सभी जानते हैं, इसलिए मैंने उनका वर्णन उचित नहीं समझा।''

परन्तु तीसरे सर्ग में उसमें 'राम वन-गमन' के प्रकरण में उन्होने कहा है कि धनुर्धारी राम 'अचल, अचंचल और अटल' हैं। राज्याभिषेक होने के बजाय, उन्हें वन जाना पड़ा। फिर भी राम पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने प्रसन्नता से राजमुकुट के स्थान पर धनुष-वाणा धारण कर त्रिशूल का ताज पहन लिया। उनका आनन्द स्वरूप वैसे का वैसा ही रहा। विमाता का षड्यन्त्र तो बहाना मात्र है। राम तो आर्य-संस्कृति की विजय पताका फहराने के लिए वन जाने को पहले से ही व्याकुलथे।

कितनी दया राम की, उनका
कितना है औदार्य प्रिये ।
राज छोड़ बैरागी बनकर
भोग छोड़ योगी बन के ।
विजय-गमन-प्रण ठान चले वन
गहन प्रवासी वन-वन के ।

कैकयी यह जानती है कि राम त्रैलोक्य जीतने की सामर्थ्य रखते हैं। पर वह दक्षिण में भी आर्य-संस्कृति का वैभव प्रकाश का प्रसाद देखना चाहती है, इसीलिए उसने यह योजना बनायी। नवीन जी ने 'राम-वन-गमन' की पृष्ठभूमि में पारिवारिक शोक की छाया तब नहीं पड़ने दी।

राम सिंहासन-त्याग से बड़ा त्याग मां सुमित्रा और उर्मिला का मानते हैं। क्योंकि वे उस सांस्कृतिक यज्ञ में शामिल होने के लिए अपने एकलौते बेटे लक्ष्मण और अपने प्राणेश्वर को सहर्ष भेज रही हैं। उनके त्याग के आगे राम स्वयं के त्याग को कुछ भी नहीं मानते-

बहू उर्मिला का मुख-मंडल,
और तुम्हारे जननि-चरण ।
रामचंद्र के त्याग-भाव को,
लज्जित करते हैं क्षण-क्षण ।

नवीन जी ने आर्य-संस्कृति को ज्ञानन के सूर्य के रूप में देखा है। उनके काव्य में राम उसी के पुरस्कर्ता के रूप में वर्णित किये गये हैं।

डॉ० बलदेव मिश्र की तुलसी के प्रति गहरी आस्था है। उन्होने अपने शोध ग्रंथ 'तुलसी' के माध्यम से तुलसी के राम को ही युग के नये पारिवेशिक सांचे में ढालने का प्रयत्न किया है। उनके काव्य 'कौशल किशोर' में राम विवाह की कथा है। भोग और योग, समृद्धि से सम्पत्ति, राग से त्याग तथा प्रवृत्ति से निवृत्ति का योग होने पर ही स्वस्थ समाज बनेगा। राम में ये दोनों ही गुण हैं। इसीलिए वे आर्य-संस्कृति के उन्नायक बन सके-

भोग, योग समृद्धि, संपत्ति, राग, त्याग समान ।

या प्रवृत्ति निवृति का वह ऐक्य शोभावान ।।

'साकेत संत' में वे राम की अपेक्षा भरत के गुणों का ज्यादा बखान करते हैं। वे कहते हैं कि राम आर्य-संस्कृति का विकास दक्षिण में करना चाहते थे, जैसा भरत उत्तर में कर रहे थे। राम की इच्छा थी कि सम्पूर्ण भारत आर्य-संस्कृति के आलोक में विकासकरे।

'रामराज्य' काव्य में कवि एक ऐसे भारतीय सुराज्य की कल्पना करता है, जिसमें गांधी का 'रामराज्य' और तिलक का 'स्वराज्य' एक साथ हो। राजा राम का मानना था कि यदि राष्ट्र-स्वार्थ और व्यक्ति-स्वार्थ का टकराव हो, तो व्यक्ति-स्वार्थ को राष्ट्र-स्वार्थ के हित मे त्याग देना प्रत्येक देशवासी का परम कर्तव्य होना चाहिए। राम ने स्वानुशासित, प्रत्युत्पन्नपति सम्पन्न, व्यवहार कुशल तथा कर्तव्यपरायण पदाधिकारियों की नियुक्ति की थी। अन्यथा प्रजा को भी भ्रष्टाचारी राजा की तरह भ्रष्टाचारी होने में देर न लगेगी।

शासक का अनुकरण किया करती जनता यह बात सिद्ध है ।

उसमें भ्रष्टाचार स्वल्प भी हो तो महाघात है ।

राम पूर्ण मनुष्यं हैं। मनुष्य ही परम सत्य है। मनुष्य मनं के लिए मनुष्य के अतिरिक्त कोई महासत्य नहीं है। वही आराध्य है, वही विष्णु है-

मनुष्य ही महासत्य मनुष्य मन के लिए ।

वही परम आराध्य, वही प्रत्यक्ष विष्णु है ।

आधुनिक काल के अन्य कवियों ने भी विभिन्न रूपों में राम की कथा का वर्णन करके जनमानस से आत्मानुशासन की बातें कहीं है। राम भारतीय संस्कृति और भारतीयता के लिए सदैव पुरस्कर्ता के रूप में आराध्य रहेंगे। यही कारण है कि उनकी आराधना देशकाल से परे हैं। आज भी उनका महत्व उतनां ही है, जितना उसके स्वयं के समय में था और आगे भी वे जनमानस के आराध्य रहेंगे।

डॉ. गिरिजा शंकर त्रिवेदी की जीवन-झांकी

जन्म — २० अगस्त १९३०, खेमानखेड़ा, पोस्ट-दौलतपुर, जिला रायबरेली, उत्तर प्रदेश

शिक्षा — एम०ए०, साहित्यरत्न

उपाधियां — विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ द्वारा 'विद्यावाचस्पति' की मानद-उपाधि

भाषा-ज्ञान — हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती एवं मराठी

सम्मान — १- वरिष्ठ पत्रकार (फोर्ट आर्य समाज की ओर से सांसद स्व० प्रकाशवीर शास्त्री द्वारा सम्मानित)

२- हिन्दी सेवाओं के लिए देश की गणमान्य संस्थाओं द्वारा सम्मान

संपादन — १-फरवरी १९६० से 'नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट' के संपादकीय-विभाग में उप-संपादक, सह-संपादक और १९८५ से संपादक। इससे पूर्व साप्ताहिक 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' से दस वर्षों तक संबद्ध

२- मुंबई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति की पत्रिका 'जनभाषा' के प्रथमांक से अवैतनिक प्रबंध-संपादक

३- अन्य कई पत्र-पत्रिकाओं के परामर्शदाता

लेखन- — १- कविता, कहानी, लेख, समीक्षा, जीवन-चरित्र, आदि समय-समय पर हिन्दी की वरिष्ठ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कई रचनाएं अभिनन्दन-ग्रंथों में सम्मिलित

२- पाठ्य-पुस्तकों में कई निबन्ध और कविताएं

३- फुटकर लेखन के अलावा हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा मुंबई से प्रकाशित सीरीज में 'अंगुलिमाल' पुस्तक का प्रकाशन, जिसका कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

४- दो पुस्तकें प्रकाश्य।

आकाशवाणी एवं दूरदर्शन — समय-समय पर रचनाओं का रेडियो एवं दूरदर्शन पर प्रसारण एवं परिचर्चाओं का सफल संचालन

अध्यापन- — बैंकों तथा अन्य सरकारी प्रतिष्ठानों में अधिकारियों को हिन्दी सिखाने के लिए और उनकी कार्यशालाओं में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित

संस्थाएं — विभिन्न हिन्दी सेवी एवं सामाजिक संस्थाओं में पदाधिकारी, उनकी कार्य-समिति में सम्मानित-सदस्य एवं न्यासी

सरकारी संस्थाएं — महाराष्ट्र सरकार द्वारा नियुक्त 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त शताब्दी समारोह समिति' के सदस्य और रेलवे बोर्ड द्वारा नियुक्त पश्चिम रेलवे की 'हिन्दी कार्यान्वयन-समिति' के सदस्य के रूप में हिन्दी की अभिवृद्धि के लिए कार्य।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के उन्नयन संबंधी कार्य, विशिष्ट सम्मान — १- महाकवि काली कला शोध केन्द्र उरई (उत्तर प्रदेश) द्वारा श्रेष्ठ-संपादन के लिए 'प्रथम गणेशशंकर विद्यार्थी पुरस्कार-८६' से सम्मानित।

२- अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनन्दन समिति, मथुरा द्वारा सन् १६८७ मार्च में 'राष्ट्र भाषा वाचस्पति' की उपाधि से राष्ट्रभाषा-सेवाओं के लिए सम्मानित।

३- 'एकादश साहित्य परिषद' रायबरेली द्वारा 'सरस्वती-सम्मान' से अभिनंदित।

४- 'काव्यलोक' जमशेदपुर से विद्यालंकार की मानद उपाधि

५- कन्नौज में आयोजित, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन द्वारा स्थापित' उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के स्वर्ण-जयंती अधिवेशन में साहित्य-सेवा के लिए 'अब्दुल रहीम खानखाना' स्वर्ण पदक से सम्मानित

६- २४ सितम्बर १६८८ को 'लायन्स क्लब मलाड-बोरीवली' द्वारा सार्वजनिक अभिनंदन

७- ११ दिसम्बर १६८८ को 'भारती प्रसाद परिषद' की ओर से हिन्दी एवं साहित्य-सेवा के लिए विशाल कवि-सम्मेलन में दीनानाथ मंगेशकर भव्य सभागृह के वार्षिक समारोह के अवसर पर 'भारतीय गौरव' पुरस्कार से अभिनंदित

८- २३ अप्रैल १६६० 'कला भारतीय संस्थान' वस्ती (उ०प्र०) द्वारा 'संपादक शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत।

६- 'दिव्य साहित्य परिषद उरई' की ओर से 'पत्रकार शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत ।

१०- स्व० कुंवर सुरेश सिंह द्वारा कालाकांकर, प्रतापगढ़, उ०प्र० में सार्वजनिक अभिनंदन

११- २७ सितम्बर १६६० को 'रोटरी क्लब कानपुर' द्वारा मर्चेन्ट हाल (कानपुर) में नागरिक अभिनन्दन ।

१२- 'ललितकला वीथिका' द्वारा रतलाम में डॉ० प्रभाकर माचवे द्वारा नागरिक अभिनंदन

१३- १६६० में 'महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन' (मुंबई) के उपाध्यक्ष चुनेगये।

१४- 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' की स्थायी-समिति के सदस्य।

१५- सितम्बर १६६१ में 'कान्यकुब्ज मंडल' मुंवई के अध्यक्ष चुने गये।

१६- मुंबई की हिन्दी साहित्य एवं कला की सेवा संस्था 'संयोग कला मंच' के अध्यक्ष ।

१७- 'कन्हैयालाल प्रयागदास स्मारक समिति लखनऊ' द्वारा भव्य समारोह में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल द्वारा 'साहित्यश्री' की उपाधि से सम्मानित ।

	१८- 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' की साहित्य-समिति के भी सदस्य चुनेगये।
	१९- 'अखिल भारतीय कान्यकुब्ज महासभा' के उपाध्यक्ष चुने गये।
	२०- मार्च १९९२ में बिहार में पटना महाविद्यालय के प्रांगण में नागरिक-अभिनन्दन।
	२१- रायबरेली के साहित्यकारों द्वारा भव्य समारोह में 'रायबरेली रत्न' से १९९२ में सम्मानित ।
चित्रपट	१- श्री रामानंद सागर की सीरियल 'भगवान श्रीकृष्ण' की सलाहकार-समिति के सम्मानित सदस्य
	२- दूरदर्शन से प्रसारित होने वाली धारावाहिक 'शकुन्तला' के सदस्य के रूप में आमंत्रित ।
संप्रति	भारतीय विद्या भवन, मुंबई द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'नवनीत हिन्दी डाइजेस्ट' के संपादक।
सम्पर्क	संपादक, 'नवनीत हिन्दी डायजेस्ट', भारतीय विद्या भवन, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी मार्ग, मुंबई- ४००००७
दूरभाष (कार्यालय)	३६३१२६१, ३६३४४६२
निवास	महाराज बिल्डिंग, पट्ठे बापूराव मार्ग, मुंबई- ४००००८
दूरभाष (निवास)	३०७९६३०
विदेशों में आमंत्रित	१- इंडो-नार्वेजियन इनफारमेशन एवं कल्चरल फोरम द्वारा अगस्त ९३ में आयोजित भारत-नार्वे लेखक सेमिनार एवं अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक महोत्सव में मुख्य-अतिथि के रूप में ओसलो (नार्वे) आमंत्रित
	२- फ्लोरिडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी मियामी (यू०एस०ए०) में 'गोस्वामी तुलसीदास और उनका कार्य' विषय पर पेपर पढ़ने के लिए (२६-२८ नवम्बर १९९९) को आमंत्रित
शिक्षा-क्षेत्र में योगदान	'महाप्राण पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला महाविद्यालय' (बीघापुर, उन्नाव) के आजीवन सदस्य और सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में समादृत।
संरक्षक	१- मानस-संगम (कानपुर) का ख्यातिलब्ध संस्था के संरक्षक/भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रकारिता और साहित्य-सेवा' पर पुस्तक लिखने के लिए आमंत्रित।
	२- खादी एवं विलेज इंडस्ट्रीज के केन्द्रीय कार्यालय की हिन्दी कार्यान्वयन-समिति के एकमात्र गैर सरकारी सदस्य।
	३- अखिल भारतीय रचनाकार समिति रायबरेली के फिल्म निर्माता रामानंद सागर और डॉ० गिरिजा शंकर त्रिवेदी संरक्षक ।
	४- अखिल भारतीय रचनाकार समिति द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी पत्रकारिता पुरस्कार देने का समिति के अध्यक्ष का निर्णय ।

५- १३ सितम्बर १९९८ को आर्य समाज (नई मुंवई) द्वारा विशिष्ट साहित्यकार के रूप में विशेष समारोह में अभिनन्दन-पत्र भेंट व सार्वजनिक सम्मान।

६- ३१ मई १९९९ को महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पचास हजार रुपये का 'पद्मश्री अनन्त गोपाल शेवडे पुरस्कार' केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री डॉ० मुरली मनोहर जोशी द्वारा भारतीय विद्या भवन मुंवई में प्राप्त।

७- कलकत्ता की संस्था 'रूपांवरा' द्वारा आयोजित पांडुचेरी अधिवेशन में पांडुचेरी की राज्यपाल डॉ० रंजना राय द्वारा 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी' पुरस्कार से सम्मानित।

८- महाराष्ट्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग से संवद्ध) के नवम्वर-९९ में प्रधानमंत्री।

९- उ०प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा सितम्वर-२००० 'संपादकाचार्य अंविकाप्रसाद वाजपेयी' सम्मान से अभिनंदित ।

१०- 'देवीदत्त शुक्ल शोध संस्थान द्वारा मार्च-२००० में इलाहावाद में सार्वजनिकअभिनंदन।